चन्दामामा

विक्रमादित्य भारी विद्वान था। उसे विद्वानों पोषक और दान-कर्ण की विरुदावली मिली थी। उसकी यह विरुदावली देश-देशान्तर में विख्यात हो गई थी। कहीं दूर देश में रहने बाला मातृगुप्त नाम का एक विद्वान् यह समाचार सुनकर राजनगर उज्जैनी आया।

एक दिन मातृगुप्त राज सभा में पहुँचा। मातृगुप्त को मालूम था कि किसी भी विद्वान को राजा के सामने हाथ जोड़ कर जाने की जरूरत नहीं पड़ती। राजा खुद आ जाता है और उसकी योग्यता की परीक्षा करके उसका उचित सम्मान करता है। यह रहस्य जान कर ही मातृगुप्त ने राजा से कोई याचना नहीं की। सभा में बैठे हुए और विद्वानों के साथ वह नहीं बैठा। अब मातृगुप्त इस चिन्ता में पड़ा, कि देखें-राजा किस तरह उसकी परीक्षा करता है।

राजा सभा में पहुँचा। मातृगुप्त को देखा। उसने सोचा-"यह सिर्फ कवि ही नहीं जान पड़ता है। यह तो कोई भारी गुणवान व्यक्ति है। इसकी यह गम्भीरता ही बताए दे रही है।" यह सोच कर उसने मातृगुप्त की परीक्षा लेने का निश्चय किया। यह निश्चय करके उसे भाश्रय तो दिया; लेकिन कोई स्वागत सत्कार नहीं किया।

मातृगुप्त राज भवन में रहने लगा और साथ ही यह सोचता रहा कि राजा उसे किस कसौटी पर कसता है? उसके भोलेपन को देख कर सभा में सब लोग सोचने लगे-"कौन है यह पागल ब्राह्मण ?"

सभा का विदूषक मातृगुप्त को लक्ष्य करके हास्य-परिहास करने लगा। द्वार-पाल भी उसकी चुटकी लेने लगा। लेकिन मातृगुप्त ने किसी की कोई परवाह न की ।

दरअसल वह अपनी चिन्ता में तथा अपनी भावना में इस तरह डूबा हुआ था कि दूसरी ओर नजर उठा कर भी नहीं देखता था। अपनी विद्वता वह किस प्रकार राजा के सामने प्रकट करे इसी चिन्ता में उस का एक साल बीत गया।

एक रोज विक्रमादित्य भ्रमण के लिए निकला तो उसके सामने मातृगुप्त दीख पड़ा। वह अत्यन्त दुबला-पतला हो गया था, और मैला-कुचैला दीख पड़ता था। उसका मुख अत्यन्त उदास था ।

राजा सोचने लगा-"यह बेचारा परदेशी पण्डित विद्वान् यहाँ अकेला और निस्सहाय स्थिति में पड़ा हुआ है; यह जान कर भी मैंने एक साल से इस की कोई सुधि न ली। जाने इसे कितना कष्ट हो रहा होगा। अब जरा भी देर करना उचित नहीं होगा।"

इस प्रकार मन ही मन सोच कर राजा यह उपाय ढूँढ़ने लगा, कि कैसे इस का मान- सम्मान किया जाय। तत्काल उसे कोई उपाय सूझ नहीं पड़ा।

जाड़े का समय था, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। आधी रात के समय

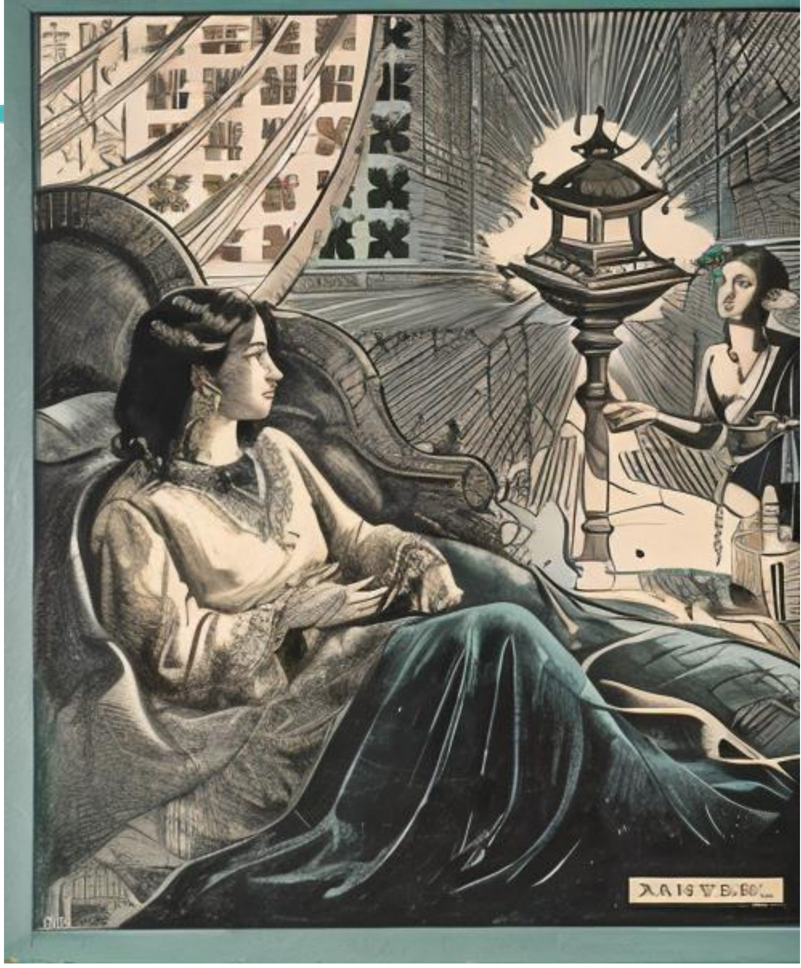

हठात राजा की नींद खुल गई। कमरे में दीपक जल रहे थे। कमरे को गरम रखने के लिए अङ्गीठियों में भी आग जल रही थी। टेढी हवा के झोंकों के कारण बाहर की दीप-शिखाएँ काँप रही थीं। "कौन है वहाँ ?" राजा चिल्ला उठा। कोई जवाब न मिला। पहरेदार सब गाढ़ी नींद में बेखबर पड़े हुए थे। "महाराज ! मैं हूँ मातृगुप्त।" यह कण्ठ स्वर राजा को सुन पड़ा। राजा ने उसे अपने पास बुला लिया। जाते हुए मातृगुप्त बुझती हुई बत्तियों को उकसाता गया। इस के बाद उसने कहा- "आज्ञा महाराज !" मातृगुप्त जाड़े में थर-थर काँप रहा था।

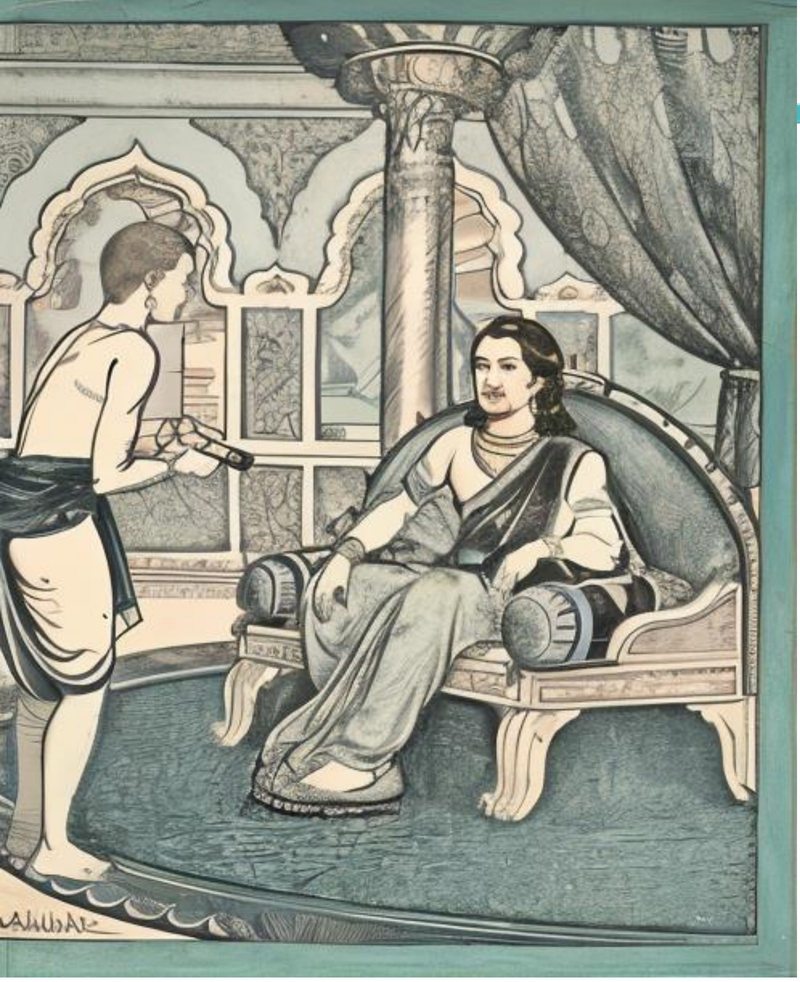

उस श्लोक का मतलब यह था- "महाराज, विचार सागर में में डूबा हुआ हूँ। ठण्डी हवा के कोड़े सटासट लग रहे हैं। ओढ़ने के लिए कपड़े न होने के कारण आग जला कर ताप रहा हूँ। लेकिन मेरे अभाग्य से वह भी बुझती जा रही है। फूँक न सकने के कारण दाँत कटकटा रहे हैं। भूख और प्यास के कारण कण्ठ सूख गया है, और जीभ तालू से सट गई है। मेरे ऊपर कुछ ख़याल होने के कारण निद्रा देवी मुझे छोड़ कर चली गई। लेकिन रात उसी तरह अचल हो कर बैठी हुई है।"

इसके साथ-"राजा ने उसे इस असमय में क्यों बुलाया ?" इसकी चिन्ता भी उसे खाए डाल रही थी।

"रात अब और कितनी बाकी है? सवेरा होने में कितनी देर है ?" राजा ने पूछा।

"रात अब सिर्फ एक पहर बाकी रह गई है।" मातृगुप्त ने जवाब दिया।

"सबेरे को तुमने अच्छी तरह पकड़ा है; क्या रात में सोते नहीं हो ?" राजा ने फिर से प्रश्न किया।

इसके जवाब में मातृगुप्त ने वही के वहीं एक सुन्दर श्लोक रच कर सुना दिया।

यह सुन कर महाराज को कितनी खुशी हुई, इसे कह कर बताया नहीं जा सकता। राजा ने उसे अपने घर जाने की आज्ञा दे दी, लेकिन यह भी कह दिया कि जाने के पहले वह दरबार में हम से मिल ले।

महाराज से बात कर आया, इसके लिए वह अपने भाग्य को कोसने लगा-"मेरी इस असहायावस्था को देख कर भी राजा ने उसे दूर करने का कोई उपाय नहीं किया। अब वह और क्या करेगा; इसकी आशा ही बेकार है। यहाँ एक साल बीत गया; मेरे धैर्य की परीक्षा हो गई। अरमान सब उड़

गए। इस प्रकार सोच कर मातृगुप्त ने दूसरे दिन सवेरे ही विक्रमादित्य का आश्रय छोड़ कर चले जाने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन सवेरे-

निराशा से भरा, दुबला-पतला बना हुआ यह विद्वान, उदास मुख लिए आया और उसने राजा को अभिवादन किया। "ऐ कवि-कुल चूडामणि। कष्ट का ख्याल न करके तुम यह मेरा आज्ञा पत्र ले जाओ, और कश्मीर देश के प्रधानमन्त्री के हाथों में दे दो। यह एक भारी गुप्त-पत्र है। किसी के हाथ में पड़े बिना बड़ी होशियारी से इसे मन्त्री के पास पहुँचाना। खूब होशियार रहना। यह महाराज की आज्ञा है।" ऐसा कह कर वह पत्र उसके हाथ में रख दिया।

पत्र लेकर मातृगुप्त ने राजा से विदा ली। अब उसके मन का कष्ट और भी ज्यादा हो गया। उसने सोचा- "अरे, यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि राजाश्रय में आकर कोई मान सम्मान तो पाया नहीं, उल्टे हरकारे की तरह चिट्ठी पहुँचाने का काम सौंप दिया गया है।" ऐसा अपमान

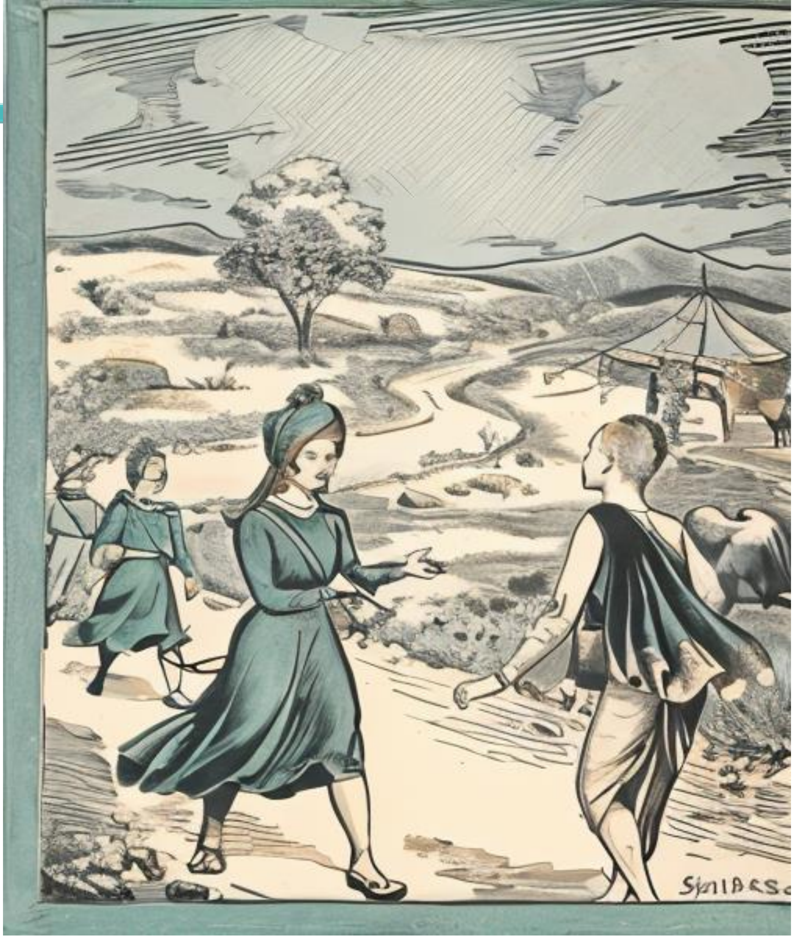

देख कर मातृगुप्त राजा और राज्य के कर्मचारियों को कोसने लगा।

जो भी हो, अनेक कष्ट झेलते हुए मातृगुप्त काशमीर राज्य की सीमा पर 'कामबूर' नामक नगर में पहुँचा। गाँव के बाहर ही उसे एक डेरा दीख पड़ा। वहाँ काशमीर राज्य के मन्त्री भारी स्वागत सत्कार के लिए एक बड़े जलसे-जुलूस के बीच किसी के आने की राह देख रहे थे। मातृगुप्त ने अपने कपड़े बदले और कुछ साफ सुथरा मालूम होने के लिए कुछ धो-पोंछ कर राजा का पत्र हाथ में ले लिया और जाकर काशमीर राज्य के मन्त्री के हाथ में देने को तैयार हुआ।

विक्रमादित्य महाराज के पास से कोई दुत आया है; द्वारपाल ने यह समाचार जा कर मन्त्री से निवेदन किया |

चारों ओर से मन्त्री और सामन्त दौड़ कर मातृगुप्त के सामने आ गए और उसकी अनेक तरह से स्तुति पूजा करके मान सम्मान के साथ उसे ऊँचे आसन पर बिठा दिया।

यह आदर-सत्कार क्यों हो रहा है; मातृगुप्त को इसका रहस्य कुछ भी नहीं मालूम हुआ। दरिद्र कवि शर्म के मारे जमीन में धँसा जा रहा था।

इसके बाद राजोचित सम्मान के साथ उसका अभिषेक किया गया। चन्दन तिलक लगाए गए। नबरत्नों से खचित भूषणों से अलङ्कृत करके उसे स्वर्ण सिंहासन पर बिठा दिया गया। इस प्रकार राज्याभिषेक करने के बाद प्रधानमन्त्री ने उस विद्वान को सम्बोधन करके कहा- "महाराज! हमारे इस काश्मीर-राज्य के लिए एक योग्य राजा की जरूरत थी। उस पद के लिए हमने महाराज विक्रमादित्य से प्रार्थना की थी। उन्होंने इसके लिए आपको ही हमें प्रदान किया है। अब से आप ही इस देश के महाराज हैं।"

मातृगुप्त को यह सब स्वप्न-सा मालम हुआ। वह विक्रमादित्य की अद्‌भुत प्रज्ञा, उसकी अगाध उदारता को याद करता तन्मय हो गया। महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता जताने के लिए उसने एक अच्छा श्लोक रच कर भेज दिया।

मातृगुप्त जब राजा हुआ तो प्रजा की भलाई के लिए प्रजा की इच्छानुसार राज्य करने लगा। इतना ही नहीं विद्वानों के सत्कार में गुप्त दान देकर उसने महाराज विक्रमादित्य का अनुसरण करना शुरू कर दिया।

दुनिया को दुःख देने वाला लङ्का द्वीप का राजा रावण एक दिन अपनी पटरानी मन्दोदरी के साथ पुलस्त्य मुनि को देखने गया। जिस समय पुत्र और पुत्रवधू आश्रम में पहुँचे; पुलस्त्य मुनि कोई काव्य पढ़ रहे थे। यह देख कर रावण ने पूछा-"यह किसकी गाथा है ?" इस के जबाब में पुलस्त्य मुनि ने कहा-"यह रामायण है। इसे वाल्मीकि मुनि ने लिखा है। इसकी विचित्रता यह है कि इसमें अभी तक जो घटनाएँ हो गई हैं, उसके वर्णन के सिवा भविष्य में होने वाली घटनाओं का वर्णन भी है।"

"वह होने वाली घटना क्या है ? मुझे भी कुछ सुनाइये न।" रावण ने मुनि से कहा।

"विष्णु भगवान भू-लोक के राजा दशरथ के घर में पुत्र के रूप में पैदा होंगे और युद्ध में रावण का संहार करेंगे।"

उनकी बातें ध्यान से महारानी मन्दोदरी सुन रही थी। हठात् वह काँप उठी और आतुरता से अपने स्वामी से पूछ बैठी-"रावण का नाम ले रहे हैं। कहीं हमारे दुर्भाग्य से वह रावण आप ही तो नहीं हैं?" यह सुन कर पुलस्त्य मुनि बोले-"दुनिया में दो रावण नहीं। ऐसा कहने से हमारा यह रावण ही माना जाएगा-समझी?"

यह बात सुनते ही महारानी मन्दोदरी अपने ऊपर आने वाली आपदा की बात सोच कर दुःख करने लगी।

रावण ने हँस कर कहा-"दशरथ तो कोई आदमी ही होगा; और मैं तो मनुष्य को खा जाने वाले राक्षसों का राजा हूँ। मुझे मारेगा दशरथ का वह बेटा ? इस गपड़चौथ गाथा पर विश्वास मत करो।" यह

सुनकर पुलस्त्य मुनि ने कहा-"यह गपड़चौथ गाथा कदापि नहीं हो सकती।"

"तो फिर एक काम किया जाय ?" रावण ने कहा।

"क्या?" मन्दोदरी ने पूछा।

"वह दशरथ नाम वाला आदमी तो कहीं-न-कहीं पैदा हो गया होगा ही। उसको पकड़ कर हम मार डालें, तो फिर उस के पुत्र कहाँ से पैदा होगा और वह कहाँ से मुझे मारेगा?" रावण ने कहा।

बस, फिर वह पिता से विदा लेकर पक्षी के साथ लङ्का लौट आया, और अपने दूतों को बुला कर कहा-"जाओ, फौरन पता लगाओ कि दशरथ नाम का कोई आदमी वहीं है क्या और उसके कोई पुत्र भी है क्या?"

कुछ दिनों के बाद वे दूत सब लौट आए और कहने लगे-"महाराज! हेमपट्टन का राजा है हरसेन। उसने कौशल देश के राजा, और कैकई देश के राजा को हरा दिया। कौशल देश के राजा के कौशल्या नाम की और कैकेई देश के राजा की कैकेई नाम की पुत्रियाँ हैं। हरसेन उन दोनों बालिकाओं को हेमपट्टन ले गया और अपनी पत्नी को दे कर बोला-'इन लड़कियों को तुम अपनी बेटी सुमित्रा के साथ पालो, फिर अच्छा सा घर देख कर तीनों की शादी एक साथ कर देंगे।"

यह सुन कर रावण बोला-"मैं ने तो तुम्हें दशरथ का समाचार लाने को भेजा था, और तुम हेमपट्टन की बातें सुना रहे हो।"

इस पर दूतों ने कहना शुरू किया-"महाराज सुनिए! उन तीनों लड़कियों में सब से बड़ी जो कौशल्या है उसकी शादी जिसके साथ होने वाली है वह है दशरथ।" इस पर रावण ने पूछा-"तो फिर शादी कब है ?"

इस पर दूतों ने जवाब दिया- "जमदग्नि नाम के एक महर्षि इसी बीच मुहूर्त ठीक करके चले गए हैं; और भी एक विचित्र बात हम ने सुनी।"

"वह क्या ?" रावण ने पूछा। "सुमित्रा और कैकेई के लिए भी जब वर खोजा जाने लगा, तब उन दोनों लड़कियों ने अपने पिता से इस प्रकार अनुरोध किया-'हम तीनों बहनें एक साथ पली और बढ़ी हैं। इस लिए हम दोनों की शादी भी उसी व्यक्ति से कर दी जाय जिस के साथ कौशल्या बहन की करने जा रहे हैं।' इसलिए सुमित्रा और कैकई की शादी भी दशरथ से होने जा रही है; ऐसा सुनने में आया है।"

"यह शादी रोक देनी चाहिए।" कहते हुए रावण राज सभा से उठा और हेमपट्टन के राजा हरसेन पर आक्रमण कर बैठा।

रावण ने युद्ध में उस राजा को हरा दिया और विजय गर्व से झूमते हुए अन्तःपुर में प्रवेश किया और तीनों राजकुमारियों को पकड़ कर अपने रथ में बिठा लिया। अब दशरथ की खबर ली जाय ! इस उद्देश्य से वह उसकी राजधानी अयोध्या नगर की

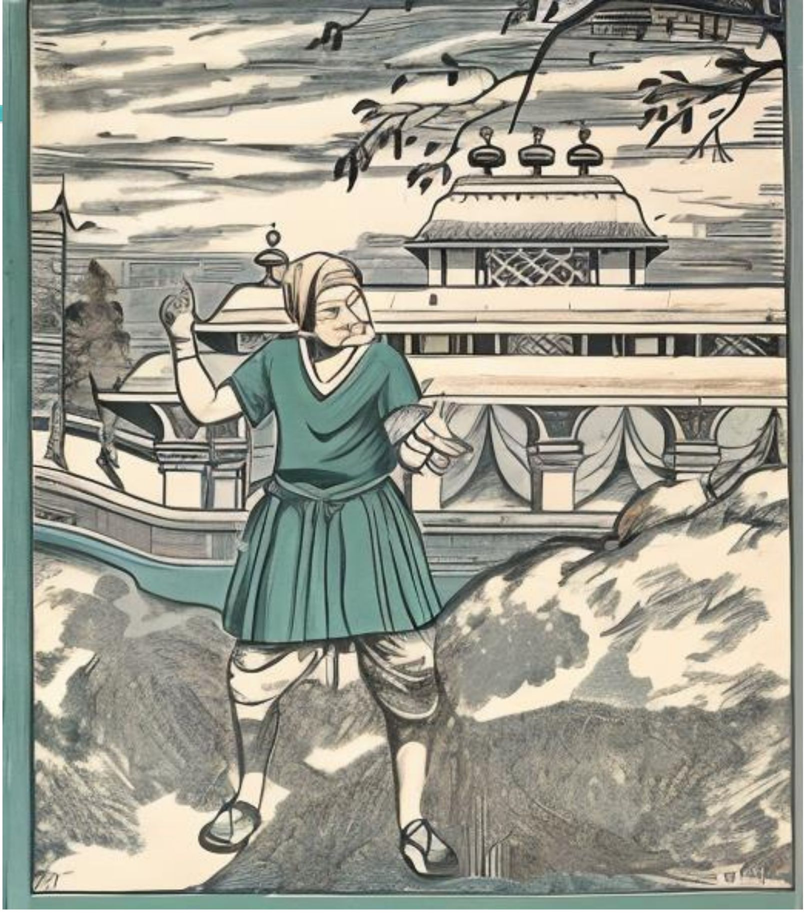

ओर अपना रथ हाँक ले चला। रास्ते में गङ्गा नदी आ खड़ी हुई। नदी किनारे एक सुन्दर नाव दीख पड़ी। "किस की है यह नाव ?" यह सवाल सुन कर एक मल्लाह उस के सामने आ खड़ा हुआ और बोला-"यह हरसेन महाराज की नाव है। उनकी लड़की की शादी होगी, और उनके दामाद दशरथ महाराज शादी करने आएँगे और इसी नाव पर नदी पार करेंगे।"

यह बात सुनते ही रावण के मन में एक विचार आया-"इन आदमियों के मारने के लिए मैं खुद अयोध्या क्यों जाऊँ? उन दुर्बल देहधारियों को मारने को तो केवल मेरे सेवक

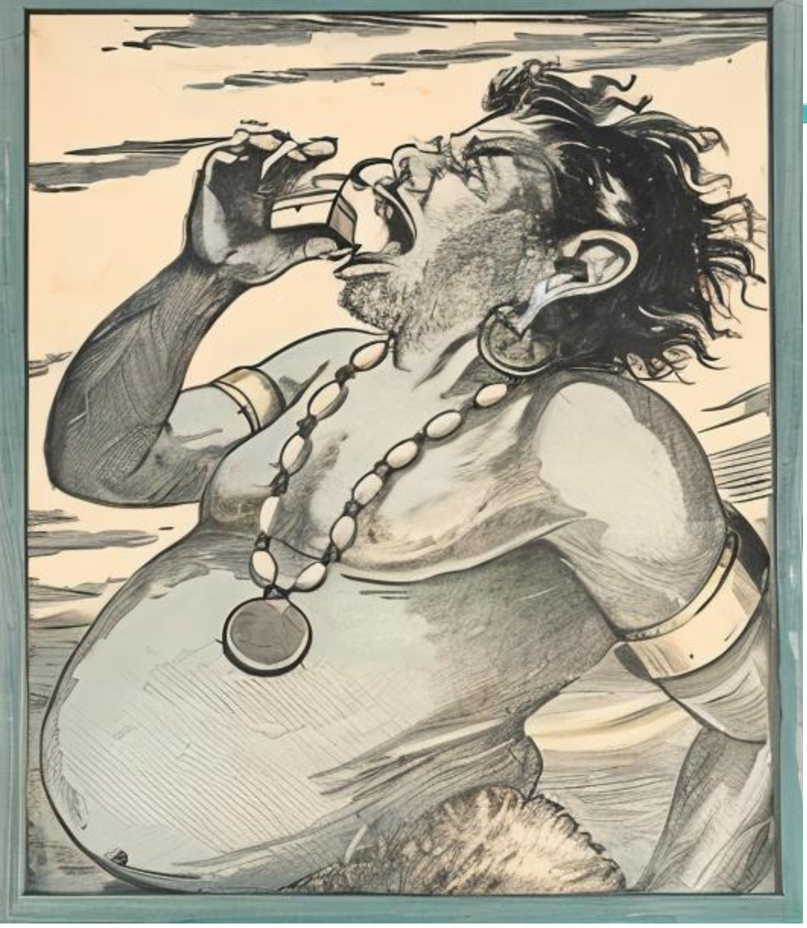

ही काफी हैं।" यह सोच कर रावण ने अपने मायावी राक्षसों को बुला कर कहा-"तुम लोग इन सब मल्लाहों को मार कर खा जाओ, और फिर इनका रूप धारण कर लो, और दशरथ के आने पर उस को अपनी नाव पर चढ़ा लो, और जैसे ही नाव बीच धारा में आए, वैसे ही उसे डूबा डालो।"

मायावी राक्षसों को ऐसी आज्ञा देकर राजकुमारियों को साथ लिए रावण लङ्का पहुँचा। लड़कियों को देख मन्दोदरी ने पूछा-"ये किसकी लड़कियों है?" यह सुन कर रावण ने कहा-"दशरथ के लिए तो मैंने नदी-गर्भ की सेज तैयार कर दी है। वह उसी में सो जाएगा। उसकी शादी आज या कल गङ्गा नदी के गर्भ में ही होगी। उसी मुहूर्त में मैं इन तीनों लड़कियों से शादी कर लूँगा।"

मन्दोदरी ने सिर धुनते हुए कहा-"अरे! जो तुम्हारे कुल-नाश के लिए पुत्र पैदा करने वाली हैं, उन्हीं से तुम विवाह करने जा रहे हो ? क्या बुद्धि भ्रष्ट हो गई है? नागिनों के साथ खेलना चाहते हो ?"

कुछ देर सोचने के बाद रावण ने विवाह करने का निश्चय छोड़ दिया। इसके बाद लकड़ी का एक बड़ा सन्दूक मँगा कर तीनों राजकुमारियों को उसने उस में बन्द कर देने की आज्ञा दी। फिर उसके सामने एक समस्या आ खड़ी हुई, कि इस सन्दूक को छिपा कर कैसे और कहाँ रखा जाय ? उसी समय रावण को विकर्ण नाम का एक मायावी राक्षस याद आ गया। वह विकर्ण उस सोमकासुर का बेटा था जिस ने वेदों को उठा ले जा कर ब्रह्मदेव को बहुत रुलाया था और जिस को मारने के लिए ही विष्णु भगवान को मत्स्य अवतार लेना पड़ा था।

विकर्ण के आते ही रावण ने उसे वह सन्दूक दिखा कर कहा-"इसे ले जा कर

होशियारी से रखो। फिर जब में माँगू तो ला कर दे देना।"

विकर्ण ने-"जो आज्ञा महाराज।" कह कर रावण के देखते-देखते उस सन्दूक को उसने अपने पेट में रख लिया। "अब तो इसकी भनक भी किसी को नहीं मिलेगी।" ऐसा कह वह अपने निवास स्थान समुद्र को चला गया।

उधर दशरथ का दूल्हा बन कर गाजे-बाजे के साथ गङ्गा नदी के तट पर आना और नाव पर चढ़ना, रावण की आज्ञा से उन मायावी नाविकों के द्वारा नाव का खेया जाना-यह सब बातें यथा प्रकार हुई।

लेकिन जिसकी आयु प्रबल होती है, डूबो दिए जाने पर भी नहीं मरता है। धारा में वह कर समुद्र में आए हुए, और लहरों के थपेड़ों से ऊब डूब होते दशरथ को श्री गणेश दीख पड़े।

गणेश महाराज किसी काम से समुद्र में रहने वाले वरुण देवता के पास गये थे और वे वहाँ से कैलाश को लौट रहे थे। अधमरे दशरथ को घसीट कर किनारे पर ले आए और उसके पेट को मल-मल कर जितना पानी अन्दर था, सब को बाहर

निकाल डाला। ऐसा करने से दशरथ के प्राण बच गए और कैसे विवाह करने जाकर बह मौत के मुँह में पड़ा, सब बातें गणेशजी को सुना दीं। यह सब सुन कर गणेश देव ने मीन-मेख का हिसाब लगा कर कहा-जमदग्नि महर्षि ने विवाह का जो मुहूर्त्त ठीक किया था, वह कुछ ही देर में आने वाला है।"

गणेश देव जब इस तरह कह रहे थे कि लहरों पर वह कर एक सन्दूक वहाँ आया। उसे खोल कर देखा तो उसमें दशरथ की दूल्हनें बैठी दीख पड़ी। यह देख कर गणेश महाराज ने कहा-"देख ली, मेरी ज्योतिष विद्या कैसी है?" यह कह कर

उन्होंने वेद-विधि से दशरथ का विवाह संस्कार पूरा कर दिया। फिर वायु देव की सहायता से उन सबों को अयोध्या पहुँचा कर खुद कैलाश लौट गए।

समुद्र में होने वाले उस विवाह को दो तिमिङ्गल मछलियों ने देखा। नर-तिमिङ्गल ने मादा-तिमिङ्गल से कहा-"देखा ? रावण ने कितनी कोशिश की। लेकिन क्या वह इस विवाह को रोक सका ?"

"तो वह लकड़ी का सन्दूक कहाँ से आया ?" मादा तिमिङ्गल ने पूछा।

"वह विकर्ण के पेट से निकल आया। रावण की आज्ञा से उसने उसे अपने पेट में छिपा रखा था। बस, पेट में भयङ्कर दर्द शुरू हुआ और उसे सन्दूक निकाल ही देना पड़ा। इस के बाद उसे नींद आ गई। तब तक यह सन्दूक लहरों पर चढ़ कर यहाँ आ गया।" नर तिमिङ्गल ने कहा।

"अरे! जब रावण यह सुनेगा तो उस बेचारे को मार न डालेगा?" मादा तिमिङ्गल ने पूछा।

"विकर्ण के मरने से समुद्र की पीड़ा ही मिट जाएगी। इस दुष्ट राक्षस के लिए हमें कोई सहानुभूति नहीं दिखानी चाहिए और रावण को यह बात मालूम ही होने नहीं देना चाहिए। उसे तो इसी भ्रम में रखना चाहिए, कि दशरथ मर गया और राजकुमारियाँ अभी तक विकर्ण के पेट में बन्द हैं।"

फिर नर-तिमिङ्गल ने कहा-"इन राज-कुमारियों में से जेष्ठ राजकुमारी है कौशल्या। उसके गर्भ से श्री रामचन्द्र के रूप में विष्णु भगवान अवतार लेंगे और लोक की भलाई के लिए इस दुष्ट रावण का बध करेंगे।"

रामायण में जैसा लिखा था, वैसा ही हुआ। चैत्र शुक्ल नवमी के दिन भू-लोक में श्री रामचन्द्र ने अवतार लिया। उन्होंने रावण को मार कर समस्त लोक का कष्ट दूर कर दिया।

समरसेन और उसके सैनिक गण उसी तरह झाड़ी की आड़ में छिप कर झाँक रहे थे। तालाब में कोई एक आदमी खड़ा हुआ-सा उन्हें स्पष्ट मालूम होने लगा था। उस आदमी की ओर गौर से देखने से ऐसा दीखता था जैसे वह एक टोपी पहने हुए हो और उस टोपी के अग्र भाग में, दो नेत्रों से चिन्ह बने हुए थे। उन चिन्हों से एक प्रकार की कान्ति बाहर निकल रही थी।

समरसेन पहले ही समझ गया था, कि यह आदमी उस एक आँख वाले मान्त्रिक का जानी दुश्मन चतुनेत्र ही है। प्रचण्ड शरीर और छोटे-से सिर वाले उस विचित्र जीव ने जब यह देखा कि वह जानवर उसी को निगलना चाहता है तो उसने कहा- "उफ ! इस चतुनेत्र को ही तू निगलना चाहता है ? यही न ?" अब समरसेन को मालूम हो गया कि उसी का नाम चतुनेत्र है। "तो अब इसकी आँखों में पड़े बिना

कैसे बच कर भागा जाय ? समरसेन अब इस चिन्ता में पड़ा। यों जब वह इस चिन्ता में पड़ा ही हुआ था कि उसके एक सैनिक ने कहा-"सरदार, हमारी तरह दो आँख के बदले इसके चार आँखें मालूम होती हैं।" इतने में एक दूसरा सैनिक बीच ही में नाराज होकर गुस्से से बोल उठा- "मालूम क्या तुम्हारा सिर ? स्पष्ट ही तो दीख रहा है। इसके सिवा उसका नाम ही चतुर्नेत्र है।"

एक ओर समरसेन यह सब सुन रहा था; दूसरी ओर सोचता भी जाता था। फिर सहसा रुक कर उसने अपने सैनिकों से सवाल किया-"यह चतुर्नेत्र उस एकाक्षी मान्त्रिक का जानी दुश्मन ही है न ?" इसके जवाब में सब सैनिकों ने एक स्वर में कहा-"हाँ, हाँ, जानी दुश्मन तो है ही।"

इतने में उन में से एक को कुछ सन्देह हुआ, उसने कहा-"सरदार ! अगर आप गलत न समझें तो मैं एक बात पूछूँ?"

"निर्भय हो कर पूछो जो पूछना चाहते हो। तुम ही नहीं और भी जो पूछना चाहता है शौक से पूछे। ऐसे कठिन प्रसङ्ग में एक आदमी की बात पर चलने की अपेक्षा चार आदमी मिल कर सोच-विचार कर, निश्चय करके चलें, यही सर्वोतम है।" समरसेन ने लोगों का साहस बढ़ाया।

यह सुन कर उस सैनिक ने कहा- "आप का अभिप्राय यह मालूम होता है कि चतुर्नेत्र और एकाक्षी मान्त्रिक में जो बैर-विरोध है उसका उपयोग हम अपनी भलाई के लिए करें। लेकिन इस में मेरी एक बात है सिंह-बाघ परस्पर दुश्मन होते हैं। लेकिन होते ये दोनों खूँखार जानवर हैं। यह तो हम कभी भूल नहीं सकते हैं।"

समर सेन फिर विचार सागर में गोते खाने लगा-"तुम्हारी बात सही है।"

निस्तब्ध हो कर उसने कहा-"यह लोग बड़े गजब के मान्त्रिक हैं। दुष्ट जन्तुओं को अपने वश में करके रखने वाले हैं। लेकिन इनमें अपस में विरोध क्यों है इसका पता हमें नहीं लगता है। धन राशि से भरी हुई वह नाव, और नाव की रक्षा करने वाली वह नाग कन्या; इसका रहस्य हमें नहीं मालूम होता है। मुझे तो यह सन्देह पकड़े हुए है कि इस भयङ्कर द्वीप में इनको इतने धन की क्या जरूरत है ?" इतने में तालाब से निकल कर चतुनेत्र किनारे पर आ गया। चार-एक कदम चल कर रुका और जहाँ समरसेन और उसके सैनिक छिपे हुए थे उस शाड़ी की ओर गौर से देख कर हँसते हुए बोल उठा-"अरे भाइयो, आओ आओ! यहाँ आओ।" यह कह कर वह खिलखिलाने लगा।

समरसेन और उसके सैनिक थरथराने लगे। पहले तो भाग जाने का ख़याल हुआ। एक कदम रखा, दूसरा कदम डालने वाले ही थे कि चतुनेत्र का काँसे सा झनझनाता स्वर सुनाई पड़ा।

'अरे पगलों, मेरी ही आँखों में धूल झोकना चाहते हो ?ऊँहुँ। तुम से यह

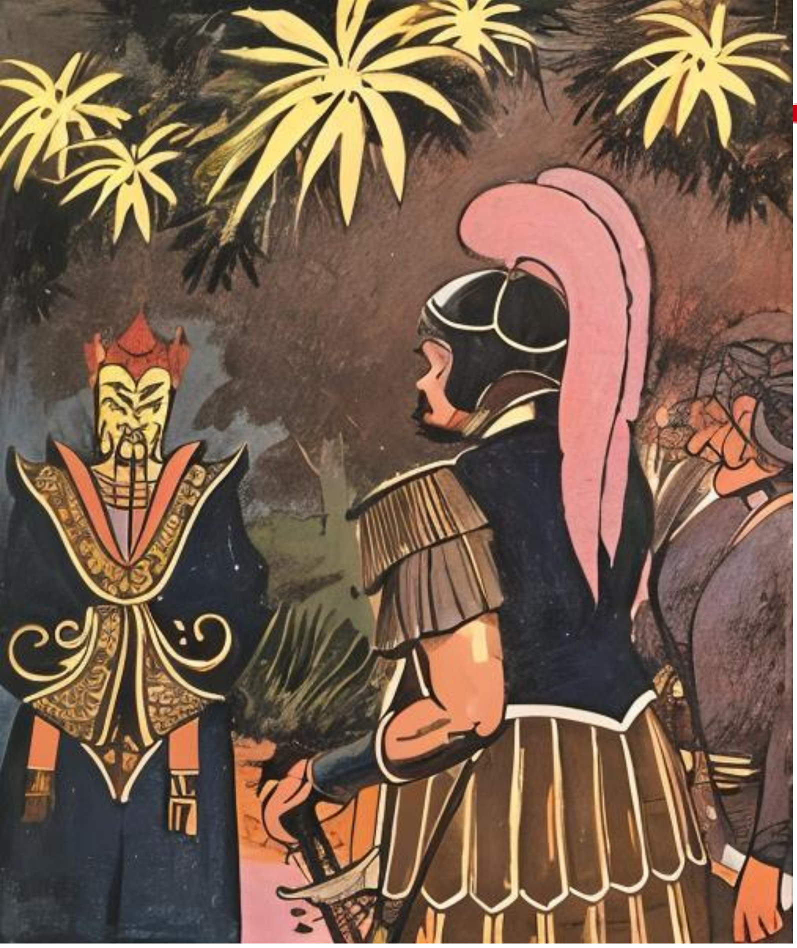

सम्भव नहीं हो सकता। ये पेड़-पौधे, पहाड़ पहाड़ियाँ, दर्रे घाटियाँ मेरी दृष्टि पर पर्दा नहीं डाल सकते हैं। इन सब को भेद कर चली जाएगी मेरी दृष्टि। एक क्षण में तुम समझ जाओगे। जरा ठहरो; बुलाता हूँ।" ऐसा कह कर वह चिल्ला उठा- "कहाँ गया रे उल्लू ! कहाँ है रे नरवानरा !"

वह पुकार सुनते ही काला उल्लू और नर-वानर दौड़े-दौड़े आए और समरसेन का रास्ता रोक कर खड़े हो गए। नरवानर हाथ में एक पेड़ की डाली लेकर हिलाने लग गया। उल्लू आसमान पर उड़ते हुए अत्यन्त कठोर स्वर में चीखने लगा।

सारी परिस्थिति समरसेन की समझ में आ गई। यह साफ समझ में आ गया कि वे लोग इस समय अत्यन्त असहायावस्था में हैं। उनके हाथ में जो उन शस्त्र थे, उन के सामने वे घास पात के बराबर भी नहीं थे। इसलिए सैनिकों के फलेजों की धड़कन को कम करने के लिए उसने कहा-"जब तक हमारी कुण्डलनी देवी हम पर सहाय हैं, तब तक किसी का क्या डर ? हमारा सब भार उन्हीं के ऊपर है। इस समय भी हम उन्हीं की शरण में हैं।"

सैनिक सब निधेष्ट खड़े रह गए। चतुर्नेत्र धीरे धीरे एक एक कदम बढ़ाता हुआ उन के पास पहुँचा, और बड़े ही मुलायम स्वर में पूछने लगा-"कौन हो तुम लोग ? इस द्वीप में

क्यों आए हो ?" उसकी मुखाकृति में कठोरता या ब्यङ्ग का कोई चिन्ह नहीं दीखता था। वह एक अत्यन्त शान्त स्वरूप दीख पड़ता था।

चतुर्नेत्र ने जब इस तरह शान्त स्वर में प्रश्न किया, तब उन लोगों के खोए हुए हवास फिर लौट आए। वे जरा दृढ़ हुए।

लेकिन इस प्रश्न का उत्तर देने में समरसेन को बड़ी हिचक मालम हुई। आखिर उत्तर देना ही उसे कल्याणकर मालूम हुआ, और यह स्पष्ट दीख रहा था कि उस विचित्र व्यक्ति से कुछ छिपा तो रह सकता नहीं है।

"हम कुण्डलनी द्वीप के रहने वाले हैं। समुद्र यात्रा करते-करते तूफान में पड़ कर हम यहाँ पहुँच गए।" समरसेन ने कहा।

चतुनेत्र हँस पड़ा-"भाइयो! तुमने जो कुछ कहा, उसमें कुछ सच्चाई तो है अवश्य; लेकिन समुद्र यात्रा करने की क्या जरूरत आ पड़ी ? यह कारण तो तुमने छिपाया, ठीक है न ?" उसने फिर से प्रश्न किया।

तब समरसेन ने किसी प्रकार के दुराब छिराव के बगैर सारी सच्ची बातें कह सुनाई। अपने राजा का खजाना खाली होने, उसे फिर भरने के प्रयत्न में सैनिक लेकर निकल पड़ना; यह सब बातें विस्तृत रूप से उसे सुना दीं। यह सब सुन कर चतुनेत्र विकट रूप से अट्टहास कर उठा और बोला-"आह हा हा हा....! धन की खोज में रवाना हुए और दुर्भाग्यवश तूफान में फँस कर इस मन्त्र द्वीप में आ पहुँचे हो। बहुत अच्छी बात है। यहाँ एक मान्त्रिक है, उसे भी धन का लोभ बहुत ज्यादा है; अगर तुम दोनों एक हो जाओ....!" वह फिर अट्टहास करने लगा।

अब समरसेन क्या कहे ? उसे कुछ भी नहीं सूझता था। उसके इस तरह अट्टहास करने से वहाँ का सारा प्रान्त प्रतिध्वनित हो उठा, और उसमें एक स्वर सुनाई पड़ा। वह एकाक्षी का स्वर था-"कहाँ है रे ! काल सर्प ! कङ्काल ! आओ खोजो....." थर-थर काँपते हुए सैनिकों को ढाढस देते हुए समरसेन बोला-"देखो ! उस झाडी में जा कर छिप जाओ। वह एकाक्षी

है एकाक्षी...." यह सुन कर सब सैनिक दौड़ कर उस झाड़ी में छिप गए।

उन लोगों का छिपना, और एकाक्षी मान्त्रिक का प्रत्यक्ष होना-एक साथ हुआ। काल-सर्प और मानव कपाल उन के पास ही हिल रहे थे। चतुर्नेत्र को देखते ही एकाक्षी मान्त्रिक प्रलय बाली आवाज में अट्टहास करके बोला-"अरे तू कितने दिन के बाद दीख पड़ा ! अब तक कहाँ छिपा था ?" कहते हुए उसने सर्र से अपनी तलवार खींच ली।

चतुर्नेत्र जहाँ खड़ा था, वहीं निश्चेष्ट खड़ा रह गया । "ओहो! आप हैं एकाक्षी महाराज, आइए। आइए।" इस प्रकार उसने भयङ्कर जवाब दिया। उसके बाद शीघ्र ही उसने पुकारा-"कहाँ है रे नर-वानरा ? किधर है रे ओ उल्लू !!" उसकी यह आवाज सुनते ही उल्लू और नर-वानर उतर आए। उनको देखते ही एकाक्षी मान्त्रिक दहल उठा।

यह देख कर चतुर्नेत्र ने कहा-"अरे ओ उल्लू ! दाहनी आँख की रुचि तो तुझ को मालूम ही है। अब इस बाई आँख का भी तू भोग लगा ले।" ऐसा

सुनते ही वह उल्लू उस एकाक्षी की ओर झपटा। वह घबरा कर चिल्लाने लगा-"अरे कङ्काल !

अरे ओ कङ्काल।" उसका चिल्लाना सुन कर क्षण मात्र में एक मानव-कपाल अपना विकराल मुहँ फैलाए हुए सामने आ कर उस उल्लू से मुकाबिला करने लगा।

"अहा हा हा....!" एकाक्षी मान्त्रिक अट्टहास करने लगा। यह देखते ही चतुर्नेत्र उग्र बन गया और चिल्ला उठा-"कहाँ है रे नरवानर !" दूसरे ही क्षण में नर-वानर एकाक्षी मान्त्रिक की ओर कूदा।वह मान्त्रिक जोर से चिल्ला उठा-"कहाँ गया

रे कालसर्प !" फौरन कालसर्प फन फैलाए हुए नरवानर पर टूट पड़ा।

झाड़ी की आड़ से यह भयङ्कर संग्राम देखते हुए, समरसेन और उसके सैनिकों ने समझा-"बराबरों का मुकाबिला है।" एक सैनिक ने कहा-"इसीलिए तो हम बचे हैं।" एकाक्षी मान्त्रिक और चतुर्नेत्र के दूत-भूतों में बड़ा ही भयङ्कर युद्ध शुरू हुआ। मानव-कपाल ने अपने विकराल मुख से उस उल्लू को पकड़ने की कोशिश की। नर-वानर को पकड़ने के लिए काल सर्प घूम रहा था। चतुर्नेत्र और एकाक्षी मान्त्रिक ने एक दूसरे की ओर ज्वालानय नेत्रों से देखा। दोनों को खूब अच्छी तरह मालूम था कि यह युद्ध शीघ्र समाप्त होने वाला नहीं। चतुर्नेत्र एक बार अपने सिर से टोपी हटाकर जोर से चिल्ला उठा-"ॐ, ह्म!"

बस ! ऐसा कहते ही वह अदृश्य हो गया, और फिर तत्काल वह काला उल्लू और नर-वानर भी गायब हो गए। एकक्षी मान्त्रिक ने गम्भीर स्वर में कहा-"गायब हो गए हो। लेकिन देखता हूँ कब तक इस तरह भागते रहते हो...." कह कर वह गरजा। मानव-कपाल और काल-सर्प को साथ लेकर वह वहाँ से चला गया। "जान बची भाई !" सोचते हुए समरसेन अपने सैनिकों की ओर आया। पूरब की ओर रहने वाले अपने जहाजों की ओर वे लोग रवाना हुए। दस कदम भी न गए होंगे की भूमि के फटने की कड़कड़ाहट सुनाई पड़ी। सुनाई ही क्या पड़ी; सामने के गगनचुम्बी पहाड़ से उठ कर उड़ती हुई अग्नि ज्याला आकाश को निगलने जा रही थी। यह देख कर समरसेन और उस के सिपाहियों के कलेजे थक् से रह गए। [अभी और है]

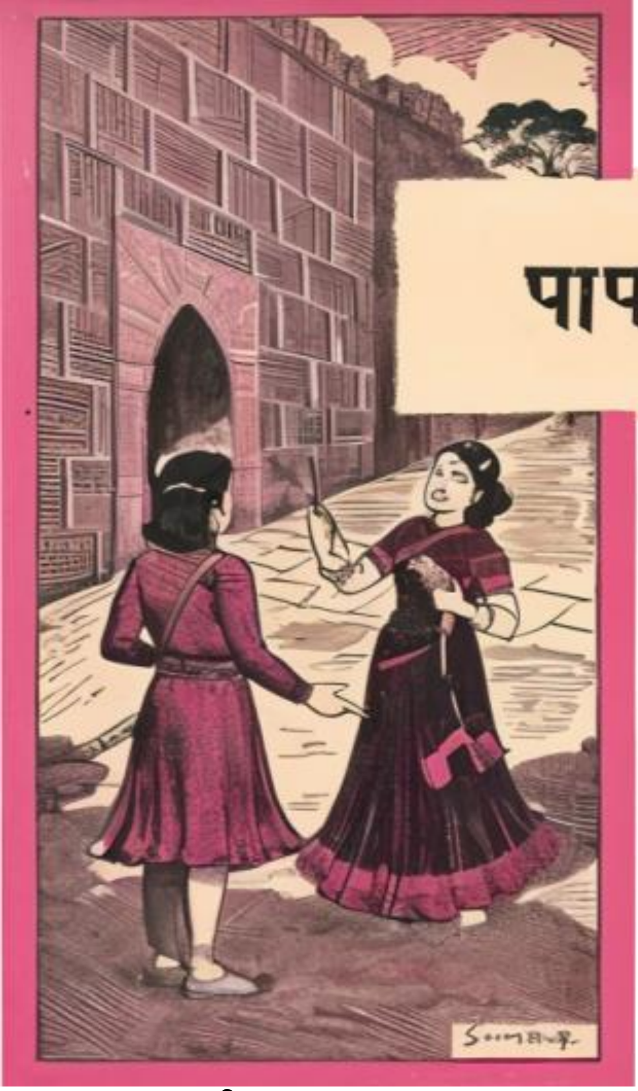

पाप का घड़ा फूटा !

परिमल राज्य का राजा था मुक्तवर्मा। उसकी रानी का नाम था प्रेमसुन्दरी। एक दिन राजा और रानी पैदल ही सैर करने निकल पड़े। वे लोग कितनी दूर निकल गए, इसका पता उन्हें ही न रहा।

जाते-जाते वे लोग जैसे ही खड़े हुए, उन्हें एक खण्डहर किला दिखाई पड़ा। वे दोनों उसके पास पहुँचे। और भी कुछ दूर जाने पर राजा के दोनों पैर जमीन में जकड़ गए। और देखते-देखते रानी पाँच रङ्ग वाले हीरामन तोते में बदल गई।

राजा हिल-डोल नहीं रहा था, इसलिए उसे अब क्या करना है; वह कुछ भी सोच नहीं सका। वह पाँच रङ्ग वाला पक्षी, राजा के चारों ओर मँडराने लग गया। किले के अन्दर से एक अद्भुत स्त्री निकल कर आई। आते ही उसने हीरामन को अपने हाथ में पकड़ लिया। यह देख कर राजा चिल्लाने लगा-"अरी ! तू कौन है? यह सब माया क्या कर रही है!"

"अहा ! तुम हो यहाँ के राजा और यह है तुम्हारी रानी ? हा हा....!! छोड़ो। अब अपनी रानी की आशा छोड़ दो। तुम अपनी राह जा सकते हो। अब कभी भी इधर पैर न रखना। अगर तुम प्रतिज्ञा करो कि यह बात तुम किसी से न कहोगे तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगी। अगर तुम किसी से कहोगे तो तुम्हारे सिर के दो टुकड़े कर दूँगी। समझ गए?" उसने बड़ी भयङ्कर आबाज में गरज कर कहा। उसने अपने

बिनी नैयर

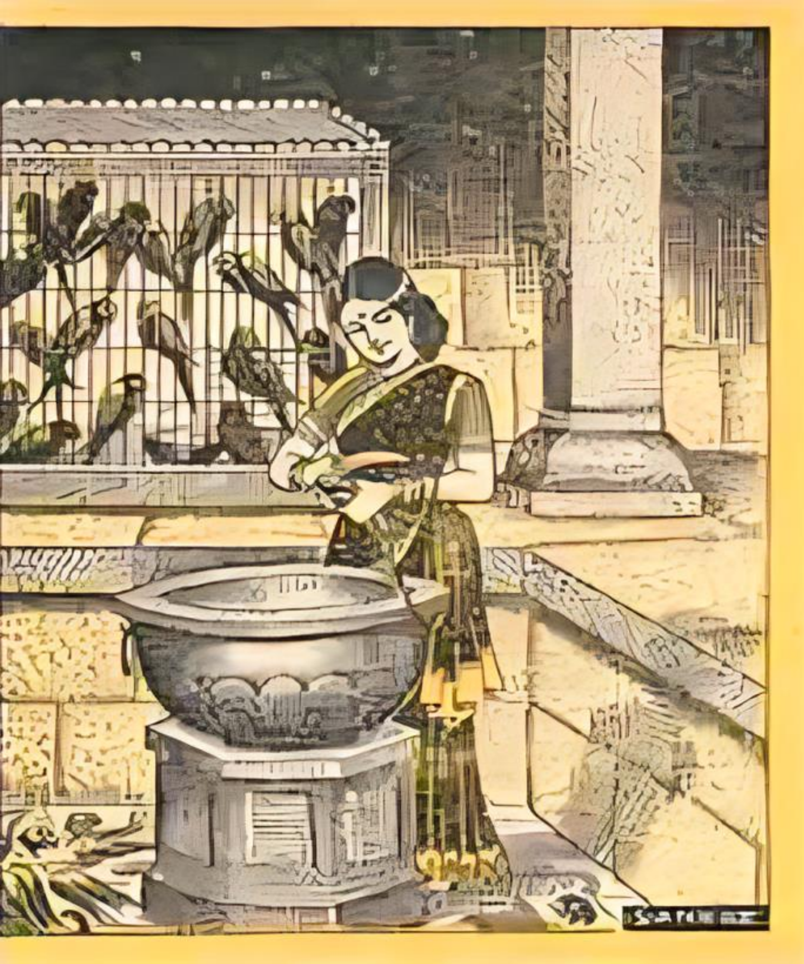

हाथ की लकड़ी से राजा को छू दिया और बस ! राजा के पैर खुल गए। वह चलने फिरने लग गया। तब राजा ने कहा-"जब तक तू मुझे मेरी प्रेमसुन्दरी को लौटा नहीं देती है, तब तक मैं यहाँ से टल नहीं सकता।" राजा ने हठ से कहा।

"तुम्हारी यह हालत है। ऐसा कह कर उस ने राजा को फिर मन्त्र से जकड़ दिया और उस पाँच रङ्ग वाले हीरामन को लेकर किले के अन्दर चली गई।

किले के भीतर एक बहुत बड़ा कमरा था। उस कमरे में ठीक निन्नानवें पाँच रङ्गवाले हीरामन तोते थे। उस जादूगरनी ने उन तोतों को फिर से एक बार गिन कर देखा। फिर एक ताड़-पत्र वाले ग्रन्थ को हाथ में लेकर कहने लगी-"आहा, आज जा कर मेरा व्रत पूरा हुआ। अब क्या है; अब तो अमृत मेरी मुटठी में है। अब तो इन्द्र-लोक मेरा है। फिर नया हीरामन जो लाई थी, उस को पिञ्जड़े में धकेल कर उस का दरवाजा बन्द कर दिया।

उस के बाद वह भीतर गई और एक बड़ा बर्तन और चमचम चमकती दस कटारियाँ ले आई। फिर किताव देख-देख कर मन्त्र पढ़ती हुई एक एक तोते को हाथ में लेती हुई कटारी से उस का गला काट कर उस का रक्त उस बर्तन में भरने लगी। इस प्रकार निन्नानवें तोतों को मार कर उनके रक्त से वह वर्तन भर दिया।

अब एक और तोते को मार देने से उस का व्रत पूरा हो जाता है। इस उत्साह से उस जादूगरनी ने सब से आखिर में जिस प्रेमसुन्दरी नामक तोते को पकड़ा था; हाथ में लिया, और बातें करने लगी। जादूगारनी यों बातें कर रही थी कि जरा ढीला पा कर वह तोता फुर्र से उड़ा और

अपनी चोञ्च से उसकी एक आँख को भौंकने लग गया। जादूगरनी व्याकुल होकर उस तोते को गाली देने और अपनी आँख मलने लगी। इतने में उसने दूसरी आँख में भी चोञ्च मार दी।

जादूगरनी की दोनों आँखें चली गई। रोती हुई वह तोते को पकड़ने दौड़ी, लेकिन तोता वहाँ कहाँ था ? वह तो फुर्र से उड़ा और राजा के पास पहुँच गया।

"ठहरो, मैं तुम्हारी खबर लेती हूँ।" इस प्रकार भन-भनाती हुई निकली बह जादूगरनी। लेकिन सीढ़ी से एक ओर उतरने के बदले उसने दूसरी ओर पैर बढ़ा दिए और वह धड़ाम से नीचे गिर गई। गिरते ही वह बेहोश हो गई। साथ ही उसके हाथ की जादू की लकड़ी जाने कहाँ गिर गई।

उधर नगर में, सैर करने गए हुए राजा और रानी अभी तक नहीं लौटे, यह देख कर मन्त्री ने घबरा कर आदमियों को चारों ओर ढूँढ़ने भेजा और खुद भी ढूँढ़ने निकला। जाते-जाते मन्त्री उस किले के पास पहुँचा। उस रास्ते में रोती हुई उस जादूगरनी को आदमी की आहट मिली।

उसने ध्यान धर के देख लिया कि यह अमुक आदमी है। उसने उस से कहना शुरू किया-"मन्त्री, में कौन हूँ तुमने नहीं जाना ? मैं ही तुम्हारी रानी हूँ प्रेमसुन्दरी। एक जादूगरनी न मेरी यह हालत कर दी है। मेरे पास यह जादू की एक लकड़ी पड़ी है। एक काम करो। वह लकड़ी लेकर किले के भीतर जाओ। वहाँ एक बर्तन में लाल रस है। एक गिलास में ढाल कर ले आओ और मेरे मुँह में डाल दो, तो मैं अपने असली रूप में बदल जाऊँगी। फिर में राजा को भी लाकर दिखा दूँगी।" उसके कहे मुताबिक मन्त्री जादू

की लकड़ी लेकर भीतर गया और बर्तन में रखा हुआ रक्त लाकर उसके मुख में डाल दिया।

मुँह में रक्त डालते ही रूप बदलने के बदले वह मरण-वेदना से छटपटाने लगी-"अरे, बड़ा धोखा हुआ। उस प्रेमसुन्दरी ने तो मुझे ही मार डाला। ठीक अब जाकर मेरे पाप का बड़ा फूटा। निन्नानवे स्त्रियों की हत्या का पाप अब जाकर फला।" इस प्रकार यह रुदन कल्लोल करने लगी।

उसका पिता एक ताड़-पत्र के ग्रन्थ में महा-मन्त्र लिख कर छोड़ गया था। उसमें के किसी मन्त्र को करोड़ बार जप किया जाय और पूर्णाहुति के दिन एक सौ स्त्रियों को तोते में बदल कर उनके रक्त से अभिषेक हो और उसका पान भी कर ले तो अमरत्व प्राप्त होगा। वह जो रूप धारण करना चाहे यह धारण कर सकेगी। वह अमर हो जाएगी वह कभी नहीं मर सकेगी।

इस आशा से उसने जो व्रत शुरू किया था, वह दो तरह से नष्ट हो गया। सब से पहले तो आखिरी तोता जो उसके हाथ में आया था, वह प्रेमसुन्दरी उसके हाथ से निकल गई। उसके अतिरिक्त उस तोते ने उसकी आँखें फोड़ डालीं; जिसके कारण दुष्ट-रक्त वर्तन के पवित्र-रक्त में मिल गया और निन्नानवे तोतों का समस्त रक्त अपवित्र हो गया।

यों अपनी बातें मन्त्री के सामने रोकर कहती रही। कुछ देर रोने के बाद मन्त्री की तलवार से सिर पटक-पटक कर ढेर हो गई। इसके बाद मन्त्री ढूँढता हुआ आ रहा था

कि जमीन में चिपका हुआ राजा और उसके चारों ओर उड़ता हुआ वह हीरामन उसे दीख पड़े। मन्त्री ने दोनों के ऊपर जादू की लकड़ी फेरी और राजा-रानी को असली रूप प्राप्त हो गया। फिर सब सुख-पूर्वक राज-महल में पहुँच गए ।

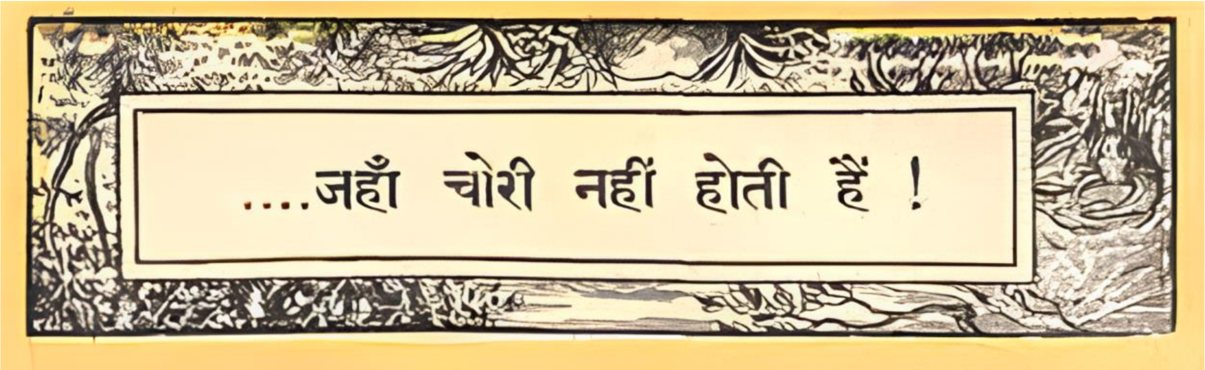

....जहाँ चोरी नहीं होती हैं !

खोजी महाशय को मिश्र से ईरान आए हुए दस दिन भी न हुए थे, कि तेहरान में उसकी जेब कट गई। कपड़े वगैरह तो मिश्र से आते समय ही चोरी हो गए थे। अब जो नकद उसके पास था, वह भी चला गया। अब उसके पास केवल अपने देश लौटने के किराए के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह गया था। इसलिए उसने निश्चय किया कि शीघ्र ही देश वापस चल देना चाहिए।

इस प्रकार जाते-जाते वह एक समुद्र के तट पर पहुँचा। उस तट प्रदेश का नाम 'किमाड़ी' था। वहाँ के तट पर चुङ्गी-घर तो बना हुआ था। लेकिन वहाँ न कोई पहरेदार था ओर न कोई मुन्शी। उसके बदले वहाँ एक बोर्ड पर लिखा था अपना चुङ्गी टेक्स यहाँ चुका दीजिए।" खोजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह चुङ्गी चुका कर निकला। जाते-जाते उसे एक पत्रिका की दुकान मिली। वहाँ नाना प्रकार की पत्रिकाएँ रखी हुई थीं। लेकिन दूकान पर दूकानदार नहीं दीख पड़ता था। खोजी ने यहाँ पत्रिका खरीदने वालों से पूछा-"यहाँ दूकान पर कोई आदमी नहीं है क्या?" वहाँ खड़े आदमी बोले-"इस प्रदेश में चोरो का डर नहीं, इसलिए बेचने बाला सबेरे यहाँ पत्रिकाएँ और प्याला रख जाता है, और शाम को जब काम करके लौटता है तो बची हुई पत्रिकाएँ और पैसे उठा ले जाता है।"

खोजी ने प्याले में पैसे डाल कर एक पत्रिका उठा ली। जब वह पत्रिका को खोल कर पढ़ने लगा तो एक बात पर उसकी दृष्टि जम गई। वह बात यह थी की-"कल किसी व्यक्ति की जेब से दो रुपए बाहर गिर गए और उसको कुछ मालूम ही नहीं

हुआ। दूसरे दिन सबेरे उसने वहाँ आकर देखा तो वे रुपए वैसी ही जमीन में चमचमा रहे थे।"

यह समाचार पढ़ कर खोजी आश्चर्य में डूब गया और सोचने लगा-"यह विचित्र प्रदेश कैसा है!" ऐसा सोच कर खोजी आगे बढ़ गया और खूब सैर-सपाटा करता रहा। शाम को जब बह एक बड़े होटल में पहुँचा तो वहाँ भी उसे वही विचित्र दृश्य दीख पड़ा। नाना प्रकार के भोजन तश्तरियों में सजे-सजाए रखे हैं और हरेक पर उसकी कीमत भी लिखी हुई है। लेकिन वहाँ भी कोई आदमी नहीं है। लोग अपनी पसन्द की चीज उठाते हैं और पैसे प्याले में डाल देते हैं। खोजी ने भी प्याले में दाम डाल कर एक तश्तरी ले ली, और खा कर सैर को निकल गया।

यों खोजी उस प्रदेश में एक सप्ताह तक रहा और फिर वह अपने देश लोटने को तैयार हुआ। लेकिन जब वह अपने जहाज पर पहुँचा, तो देखा वहाँ एक भी समान नहीं था। अब तो खोजी महाशय के हाथों के तोते उड़ गए। अब वह सोचने लगा, कि क्या करे? क्योंकि उस प्रदेश में पुलिस का कोई थाना भी नहीं था और न कहीं पर कोई सिपाही ही दीख पड़ता था। आखिरकार वह जहाज के कप्तान के पास पहुँचा और सारी बातें खोल कर उसे बता दीं। उसकी बातें सुन कर कप्तान ने कहा-"खोजी जी! अब क्या हो सकता है? इस प्रदेश में चोरी तो होती ही नहीं है। इसलिए रपट कैसे की जाय? अब आप भगवान का नाम लीजिए।"

यह सुन कर खोजी गुस्से से कुछ कहने ही बाला था कि जहाज के भोंपू से उसकी नींद खुल गई और उसने देखा कि वह 'किमाड़ी' प्रदेश जिसमें चोरी का नामों-निशान नहीं केवल एक स्वप्न था।

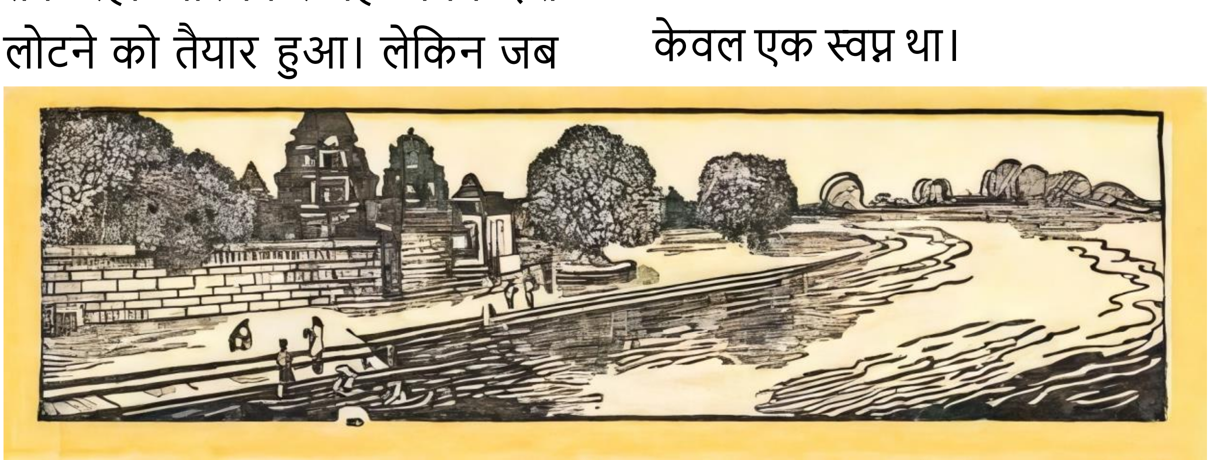

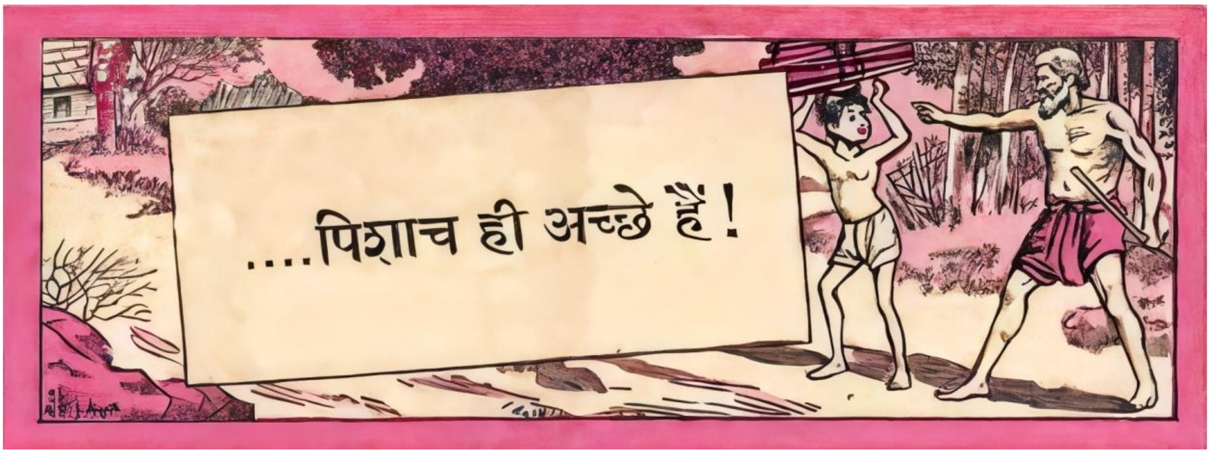

बहुत दिनों के पहले एक बड़े भारी जङ्गल के पास बुधुआ और दुरखनी नामक एक गरीब दम्पति (पति पत्नी) रहता था। कोई सन्तान न होने के कारण, वे दोनों सोमन नाम के एक बच्चे को लाकर पालने लगे। लड़का बारह साल का हुआ।

वे दोनों पति पनि काफी उम्र वाले थे, और आलसी भी। इस लिए उन लोगों ने धीरे-धीरे खेत और घर का काम, सब कुछ उस छोटे बच्चे पर डाल दिया।

एक दिन दुखनी ने जो काम कहा, उस को पूरा करके, वह लड़का जरा दीवार से सट कर बैठ गया। इतने में कहीं से आया बुधुआ, धक धक जलता हुआ-"क्या रे ! तू यों ही आराम करता बैठा रहेगा ? कौन-सा पहाड़ ढा लाया है जो इस तरह सुस्ताने बैठ गया है? सब काम तो ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है। न तूने लकड़ियाँ फाड़ी हैं, न खेत का काम किया है, उठ उठ। तुझे बिठा कर खिलाने के लिए हमारे पास इतने पैसे नहीं हैं।" कह कर वह गरज उठा।

सोमन पहले से ही थका माँदा था, यह बात सुनते ही उस के हृदय की आग और धधक उठी। वह मन-ही-मन पीड़ा से घबरा कर भगवान को पुकारने लगा-"'हे भगवान ! कैसी यातना दी है मुझे ? इतना काम और पेट भर कर खाना भी नहीं ?"

इस प्रकार बिलखते हुए सोमन चूल्हे पर बर्तन रख कर बैठ गया। उसके मन में एक ख्याल आया-"इस यातना से छुटने का एक ही उपाय है कि यहाँ से जङ्गल में भाग जाना।"

भजन लाल शर्मा

इस खयाल में डूबे और बैठे हुए सोमन की पीठ पर अकस्मात आकर एक गरम-गरम लकड़ी लगी।

"बर्तन में उफान आ रहा है और तू बैठा देखता है ? क्या ध्यान लगा रहा है? खूब खा लेना पेट भरके..." ऐसा कह कर दुखनी उसे पीटने लगी।

अब यह गाली-मार सोमन सह न सका। उठा और ऐसा उछला कि एक ही छलाँग में घर से बाहर हो गया और जङ्गल की ओर भाग चला। फौरन दुखनी अपने पति को पुकारने लग गई। घड़-फड़ा कर बुधुआ आया और सोमन को भागते हुए देख कर जोर से चिल्लाने लगा- "'अरे नादान सोमन ! जङ्गल की ओर भागा जाता है। बहाँ तू एक क्षण भी जिन्दा रह सकेगा ? जङ्गल के चारों ओर एक बड़ी ऊँची दीवार खड़ी है उस को तू लाँघ नहीं सकेगा। अरे तू जानता नहीं जङ्गल में कैसे खूँखार जानवर और भूत प्रेत रहते हैं।" यों वह जोर-जोर से चिल्लाता रहा।

कुछ भी हो ! इतना सब कुछ कहने पर भी जिसको अपनी जिन्दगी से ही नफरत हो गई थी वह लड़का इन

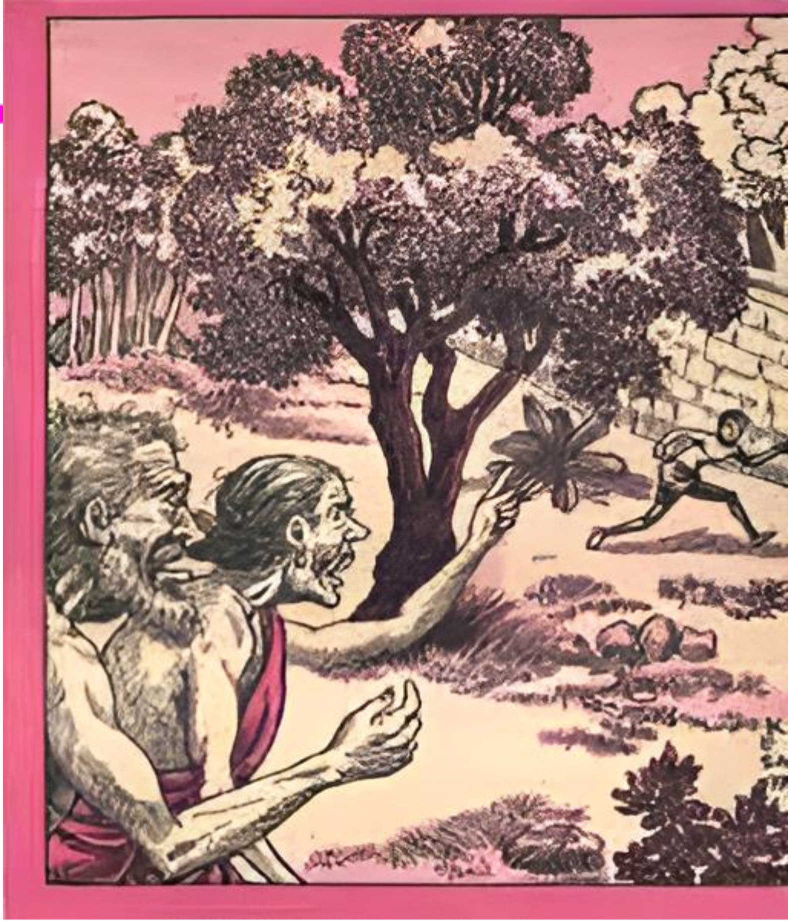

बातों पर क्या ध्यान देता? "इन क्रूर मानवों से तो वह पिशाच ही अच्छे हैं।" इस प्रकार उसने दृढ़ निश्चय कर लिया। तेजी से नाक की सीध में दौड़ा चला गया।

कुछ दूर दौड़ने के बाद बुधुआ के कहे अनुसार एक बड़ी भारी दीवार जङ्गल को घेरे सोमन को दिखाई पड़ी। लेकिन सोमन को देखते ही यह दीवार एक जगह से फट गई और जाने की राह निकल आई।

यह कैसा आश्चर्य ? जरा देखें तो सही! यह सोच कर वह उस दीवार में घुसा और जङ्गल में दाखिल हो गया। वहाँ उसे बड़े-बड़े दरख्त, विचित्र पौधे, लताएँ -

जड़वत् होकर उसने पीछे मुड़ कर देखा। यह एक बहुत बड़ा पेड़ था। "किसने यह आवाज दी, क्या तू ने?" आश्चर्य से सोमन ने पूछा।

"अरे, हाँ रे छोकरे ! मैने ही यह आवाज दी है। पहले मेरे शरीर पर से उतर कर दूर तो हट जा। अब में अधिक देर तक तेरा भार सहन नहीं कर सकता।" उस विचिन्त्र वृक्ष ने कहा।

जिनके कारण दिन में ही सर्वतत्र घने बादलों से घिरे घोरान्धकार-सा फैला हुआ था। धीरे-धीरे सोमन जङ्गल में कदम रखने और मन ही मन सोचने लगा-"यह अन्धकार और यह छाया, मेरा क्या कर सकते हैं? यहाँ के खूँखार जानवर भी मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं ? तो मुझे क्या करना चाहिए....?"

"तुमको अभी यह करना चाहिए...।" इस प्रकार की एक आबाज तुरत सोमन के कानों में पड़ी। "तुम को मेरी देह पर से उतर कर जरा दूर हट जाना चाहिए। समझे ?" उस ध्वनि ने फिर कहा।

उसकी यह बात सुन कर लड़के को कुछ ढाढ़स हुआ और उसने निर्भय होकर उस पेड़ से पूछा-"आखिर तू पेड़ ही तो है न? और मेरे साथ दया-भाव से ही तो बात कर रहा है। तो फिर सुन ! मुझे अभी बड़ी तेज मूख लग रही है। क्या यहाँ कहीं कुछ खाने को मिल सकेगा ?"

"इस की क्या चिन्ता ? क्या चाहिए तुझे बोल ?" उस महावृक्ष ने कहा। यह सुन कर सोमन को बड़ी खुशी हुई। उसने कहा-"देखने में तो तू कल्प-वृक्ष ही मालूम होता है। इस जङ्गल से मुझे कितना डर लगता था; लेकिन तुम्हारी बातें सुनते ही मुझ में निर्भयता आ गई।"

यह सुन कर वह वृक्ष उपेक्षा के भाव से हँसा-"अरे, नादान छोकरे ! तूने तो इसे एक मजे का खेल ही समझ लिया है, और खूब दावत उड़ाने की सोच रहा है। तो फिर याद रख; इसी प्रकार अभी कोई आ जाएगा और तेरा भी भोग लगा लेगा।"

वृक्ष के ऐसा बोलते ही सोमन के हाथ-पाँव फूल गए। "तो क्या कल्प-वृक्ष, तू ही मुझे घुटक जाएगा ?" ऐसा कह कर उसने रोनी सूरत बना ली।

"मैं तुमको नहीं घुटकूँगा। आदमी का माँस मुझे भाता ही नहीं।" पेड़ ने कुछ देर रुक कर फिर कहा-"लेकिन वह लम्बी नाक वाला तो आदमी के माँस पर फिदा रहता है। अभी वह यहाँ आएगा। इसलिए उसका आहार होने के पहले तू कुछ अपना आहार तो पूरा कर ले।" उस वृक्ष ने कहा।

यह बात सुनते ही सोमन खाने जाते फलाहार को छोड़ कर पूछने लगा-"अच्छा! तो क्या वह लम्बी नाक वाला अभी यहाँ आ जाएगा, और आकर मुझे खा जायगा ? अरे ! तो मैं कहीं जाकर छिप जाऊँगा।" कहते हुए सोमन तुरन्त वहाँ से चल पड़ा।

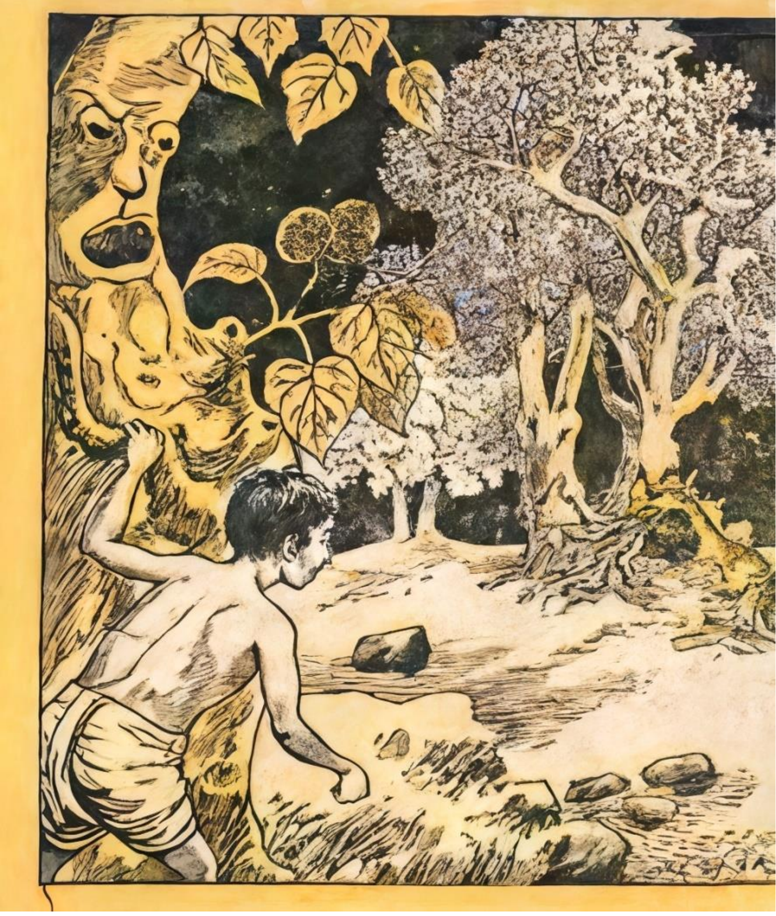

सोमन कुछ दूर ही दौड़ा था कि सारा प्रदेश इतना गरम हो उठा कि सहन के बाहर हो गया।

"ऐसे गाढ़े अन्धकार में कहाँ से आ रही है यह गरमी?" ऐसा सोच कर उसने अपने चारों ओर गौर से देखा। इतने में उसे वह पेड़ हिलता सा मालूम हुआ और एक भयङ्कर आवाज सुनाई पड़ने लगी।

"ऐसा लगता है जैसे तुझे लम्बी नाक बाले की बात मालूम नहीं हो ? उस भयङ्कर जानवर को जब भूख लगती है, तब अपने चारों ओर कुछ योजन तक वह ज्वाला फैला देता है। उसकी गरमी से

जमीन सब जल जाती है। यह देखो !" सोमन ने उस ओर देखा। एक भयङ्कर जानवर अङ्गारे उगलता हुआ उसी की ओर दौड़ा आ रहा था। सोमन के पैर दौड़ने लगे। लेकिन वह भयङ्कर जानवर चिल्ला कर बोला-"अरे छोकरे, दौड़ने से कुछ लाभ नहीं। साधारण समय होता तो दौड़ने में मैं तुझसे होड़ लगा लेता। लेकिन अभी तो मुझे कड़ाके की भूख लग रही है। आखिर तू किसी तरह बच तो सकता नहीं। खैर ! दो-चार कदम इधर-उधर डाल ले, दोनों की थकावट दूर हो जाएगी।"

यह बात सुन कर सोमन समझ गया कि दौड़ने से अब कुछ भी लाभ नहीं। इसलिए उसने सोचा-"अब तो मौत के मुँह में जाना ही है! क्यों न आँखें मूँद कर यहीं खड़ा रह जाऊँ?" इतने में लम्बी नाक बाला उसके पास पहुँच गया। डर के मारे काँपता हुआ सोमन उसके सामने खड़ा था। इतने में उसे एक बड़ी भयङ्कर छीङ्क आई।

"ओफ ! कैसी थी यह भयङ्कर छीङ्क ! प्राण ही निकल गए। जब कि मैं एक बढ़िया भोजन करने जा रहा था कि न मालूम कहाँ से आ गई यह छीङ्क। अगर यह भयङ्कर सर्दी कोई दूर कर दे तो मैं उसकी मुराद पूरी कर दूँगा।" उसने कहा।

लम्बी नाक वाले के ऐसा कहते ही सोमन के दिल में कुछ ढाढ़स बँध गया। उसने कहा-"अगर तू अपनी बात पर पक्का रहे तो मैं एक क्षण में तुम्हारा जुकाम दूर कर दूँगा।" "मैं अपनी बात से कभी नहीं टलूँगा। मेरी बात को तो तू विधाता का बज्र-लेख समझ ले।" लम्बी नाक वाले ने बचन दिया। "तो फिर इस प्रदेश को छोड़ कर बाहर आ जा। हमारे देश में सूर्य-रश्मि काफी हैं। छीङ्क के लिए बह राम-बाण दवा है।" सोमन ने कहा।

"अरे! सूर्य क्या है? और सूर्य-रश्मि किसे कहते हैं?" अचरज में पड़कर लम्बी नाकवाले ने सोमन से अनेक प्रश्न किए।

तब सोमन ने उसे सूर्य किरणों के गुण बताए और सूर्य-चिकित्सा का लाभ समझाया।

लम्बी नाक वाले की खुशी का ठिकाना न रहा। सोमन आगे चला और उसके पीछे पीछे चलने लगा वह लम्बी नाक वाला। कुछ दूर जाने पर फिर वह दीवार दीख पड़ी। लम्बी नाक वाले ने उस पर अङ्गारे छोड़े। दीवार फटी और एक अच्छी राह बन गई। सोमन लम्बी नाक वाले को लेकर सीधे बुधुआ के घर की ओर चला। दूर से ही उस भयङ्कर जन्तु के साथ सोमन को आते देख, दोनों पति-पत्नी थरथर काँप उठे।

"माफ कर सोमन। हम लोगों ने तुझे बहुत सताया। अब हम पछता रहे हैं।" ऐसा कर वे दोनों उस की शरण में आ गए। तब सोमन बोला-"ऐसा मत सोचो। तुम लोगों ने जो मुझे सताया; उसी के कारण मुझ में साहस आया, और मैं समझ गया कि अगर हम किसी की भलाई चाहें तो बह भी हमारी भलाई ही चाहेगा। उस घोर जङ्गल में एक विचित्र पेड़ था, जिसने मेरा आदर किया और मुझे भोजन दिया। पिशाच जाति में गिना जाने वाला और आदमी का माँस खाने वाला यह खूँखार जानवर मेरे ऊपर विश्वास कर, मेरे पीछे-पीछे यहाँ तक आया है। यह सब आप की बदौलत ही। इस लिए मैं आप दोनों का अत्यन्त ऋणी हूँ।" उसने कहा।

लम्बी नाक बाले को सोमन अपने साथ घुमाता फिराता रहा। बहुत आदर सत्कार से उसे रखा और सूर्य किरणों की चिकित्सा से उस के जुकाम को सदा के लिए दूर कर दिया।

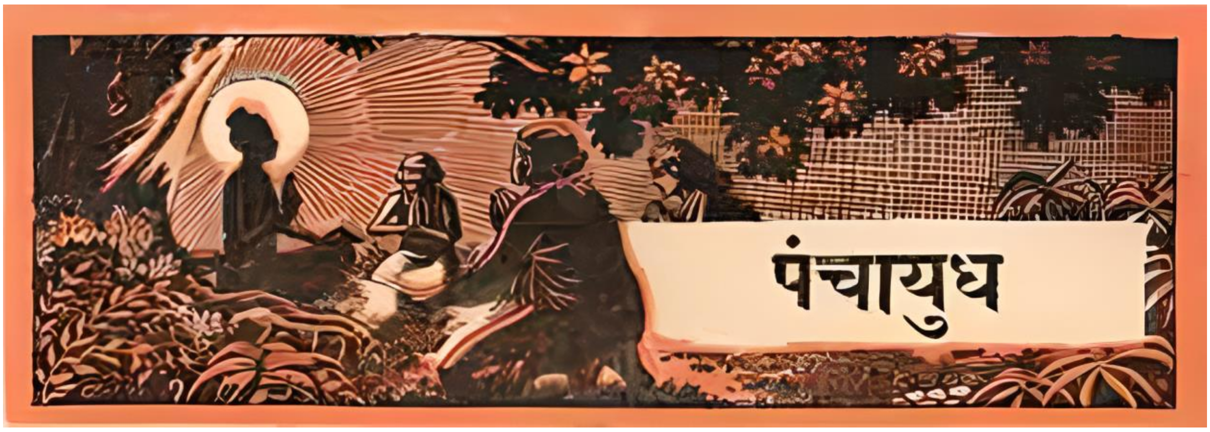

प्राचीन काल में जब ब्रह्मदत्त काशी-राज्य पर शासन कर रहा था, तब भगवान् बोधिसत्व एक राजा के रूप में पैदा हुए। नाम-कर्ण के शुभ मुहूर्त पर देश-देशान्तर से भविष्य-वाणी करने वाले लोग आए और बोले-"इस लड़के की जन्म-कुण्डली अत्यन्त अद्भुत है। पाँच शस्त्रों से यह समस्त संसार को विजय करने वाला महा पराक्रमशाली राजा होगा।" ऐसी भविष्यवाणी कर उन्होंने उसका नाम 'पञ्चायुध' रखा।

बच्चे ने होश सम्भाला, तब गन्धर्व देश के तक्षशिला नामक नगर में वह एक महा पण्डित के पास विद्याभ्यास के लिए भेज दिया गया।

पञ्चायुध तक्षशिला जाकर समस्त विद्याओं में पारङ्गत हो गया। आश्रम से विदा लेकर जब वह गुरु के पास पहुँचा तो गुरु-देव ने उसे आशीर्वाद देकर पाँच अस्त्र भी दिए। फिर गुरु की आज्ञा लेकर वह काशी राज्य की ओर चल पड़ा। रास्ते में आते-आते उसे एक भयङ्कर जङ्गल को पार करना पड़ा। वह जब जङ्गल से होकर मस्त चला जा रहा था, तो कुछ लोग उससे कहने लगे-"अरे छोकरे, तुमको मालूम है या नहीं, इस घोरारण्य में रोमाञ्चक नामक एक राक्षस विहार करता है। अगर उसकी आँखों में पड़े, तो बस! तुम्हारा काम तमाम हो जाएगा। इसलिए तुम यह रास्ता छोड़ कर दूसरे रास्ते से जङ्गल पार करो और अपनी जान बचा लो।"

लेकिन उनकी ये बातें महा पराक्रमी पञ्चायुध के कानों में पड़ी ही नहीं। मस्ती से झूमता हुआ वह नाक की सीध में चलता गया और ठीक जङ्गल के बीच में जा पहुँचा। कुछ दूर जाने पर ताड़ के पेड़

गुरचरण लाल

के घरावर बड़ा रोमाञ्चक राक्षस उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसका भयङ्कर सिर था।

लोटे की तरह आँखें थी। हाथी की तरह मुँह के भीतर से दो दाँत निकले हुए थे। सारे छरीर में भालू की तरह लम्बे-उम्बे वाल भरे हुए थे। अनेक तरह की भाव-भङ्गिमाओं से वह मय की वर्षा कर रहा था।

"कौन है रे तू ? जा कहाँ रहा हैं ? ठहर जा अभी निगल लूँ तुझे।" यों गरज कर उस राक्षस ने पञ्चायुध की ओर देखा।

राक्षस की बात सुन कर पञ्चायुध ने कहा-"औ राक्षस राजा! यह सब ज़ान-बूझ कर ही मैं इस जङ्गल में आ घुसा हूँ। तू मेरी राह मत रोक। देख! इस अस्त्र से तुझे मैं खड़े खड़े गिरा डालता हूँ। खडा रह ले.." कह कर उसने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया और कानों तक खींच कर उसके ऊपर छोड़ दिया। वह बाण जाकर राक्षस के बक्ष-कवच में लगा, लेकिन उससे राक्षस को कुछ भी नहीं हुआ। गुस्से में आकर पञ्चायुध ने उस पर एक और बाण छोड़ा। वह भी पहले की तरह जाकर उसके वक्ष-कवच में घुस गया। फिर प्रचण्ड वेग से उसने उसके ऊपर बाणों की वर्षा कर दी; लेकिन लाभ कुछ भी न हुआ।

अन्त में रोमाञ्चक ने अपने बक्ष-कवच को जोर से हिलाया और पञ्चायुध के सारे बाण सूखे पत्ते की तरह झड़ गए।

अब भगवान बोधिसत्य ने अपनी तलवार लेकर राक्षस के ऊपर बार किया।

वह बड़ी तलवार भी बाणों की तरह ही राक्षस के वक्ष-कवच में जाकर चुभ गई। इसके बाद राजकुमार ने गदा से आघात किया; वह भी जाकर उसके वक्ष से सट गया। इस तरह और भी अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया, लेकिन सब का फल ऐसा ही निकला।

यह देख कर बोधिसत्व ने कहा-"ऐ! में कौन हूँ कदाचित नहीं जानता है ? मेरा नाम पञ्चायुध है। जब मैं इस जङ्गल में आया था, तो मैं अपने हथियारों पर भरोसा करके नहीं आया था। मैं तो अपनी ताकत पर भरोसा रख कर ही आया हूँ। तो अब देख ले मेरा बल। मेरे आघात से अब तू ढेर हो जाएगा।" कह कर पञ्चायुध ने अपने हाथों में समस्त ताकत बटोर कर एक घूँसा राक्षस को मारा। बस उसका वह दाहिना हाथ जाकर राक्षस के रोएँ में सट गया।

फिर भी राजकुमार रुका नहीं; बाएँ हाथ और पैरों से उसे तड़ा-तड़ मारता गया। बस, वह हाथ और पैर भी राक्षस के रोएँ में जकड़ गए। फिर भी उसका पौरुष नहीं मरा-"तो देख ले, रे दुष्ट।" इस प्रकार गर्जन करता हुआ वह अपने सिर से ठोकर देने लगा। अरे, बेचारे का सिर भी राक्षस के रोएँ में जकड़ गया।

इतना होने पर भी बोधिसत्व का साहस नहीं छूटा। उस लड़के को देख कर रोमाञ्चक ने सोचा-"यह तो कोई साधारण आदमी नहीं जान पड़ता है। यह तो केसरी कुमार मालूम होता है। जब यह मेरे मुकाबिले में ही खड़ा हो गया, तब तो इसके धैर्य और साहस की तारीफ किए बिना नहीं रहा जाता। अपनी इतनी जिन्दगी में मैंने ऐसे साहसी आदमी को कभी नहीं देखा था।"

"छोकरे ! तुम्हारी तरह का कोई भी आदमी मुझे देख कर ही काँप जाता। लेकिन तुम में तो डर का लेश भी नहीं दीख पड़ता है। इसका क्या कारण है ?"

इसके बदले बोधिसत्व ने कहा-"कोई डरे क्यों ? जब भी वह जनमता है, मौत भी उसके साथ लग जाती है। इसके सिवा-मेरे शरीर के भीतर वज्र के समान

एक तलवार है; उसका नाम है ज्ञान। अगर तू मुझे निगल भी जाएगा तब भी वह तेरे पेट में जाकर तेरा नाश कर देगी।"

यह बात सुनते ही रोमाञ्चक ने फिर अपने मन में सोचा-"यह छोकरा जो कुछ कह रहा है, उस में तो गूढ़ तत्व भरा है। ऐसे शूर-शिरोमणि को पेट में डाल लेने से क्या होता है? इसे छोड़ देना ही अच्छा।"

उसके बाद राजकुमार से उसने कहा-"छोकरे, मैं तुम्हें निगलना नहीं चाहता हूँ। तुम खुशी से अपनी राह चले जाओ।"

"अरे राक्षस। मुझे छोड़ कर तुमने अच्छा ही किया। मैं तो जाऊँगा ही; लेकिन तू कुछ अपनी बात तो कह। कितने जन्मों तक इस प्रकार दुष्कर्म करता हुआ यह निक्कृष्ट जीवन तू बिताता रहना चाहता है? क्यों अज्ञान रूपी अन्धकार में तू अपना सिर मार रहा है?

लेकिन तू अब इस तरह नहीं रह सकेगा। बेगुनाह आदमियों को तू मार-मार कर खाता है। इससे तेरे पाप सौ गुणा बढ़ते जा रहे हैं। इसलिए अगर तू उत्तम मानव जन्म पाना चाहता है, तो पाप करना छोड़ दे।" इस प्रकार का उपदेश पञ्चायुध ने राक्षस को दिया।

इतना ही नहीं, मनुष्य को होश में लाकर उसके उद्धार के लिए जो पाँच महावाक्य कहे गए हैं, उनके बारे में और मानव को पतित बनाने के लिए जो पाँच-तन्त्र रचे गये हैं, उनके बारे में भी खोल खोल कर बोधिसत्व ने राक्षस को समझाया-बुझाया।

उस दिन से राक्षस अपनी राक्षसी वृत्तियों को भूल गया। परोपकार के बड़े-बड़े काम करके उसने बहुत बड़ा नाम कमाया। अब उस जङ्गल में जाने से किसी को कोई डर नहीं होता।

खोई हुई किताब

पुराने जमाने की बात है। केरल देश में एक ब्राह्मण रहता था। वह भारी दरिद्र था। उसका नाम-धाम भी कोई नहीं जानता था। लेकिन वह परम भक्त था। अपने इष्ट देव विष्णु भगवान की आज्ञा से उसने एक ग्रन्थ रचा। भावावेश में रचे हुए उस ग्रन्थ को ले जाकर उसने बड़े-बड़े पण्डितों और विद्वानों को दिखाया और उनसे सम्मति माँगी।

उसको देख कर प्रत्येक आदमी ने कहा-"यह क्या लिखावट है, भाई? क्या यह देव-भाषा है?" इस प्रकार लोग उसकी मखौल उड़ाने लगे। ये बातें सुन कर ब्राह्मण को भारी विरक्ति हो गई। वह ग्रन्थ को बगल में दबा कर तीर्थ यात्रा को निकल गया।

कुछ दिनों के बाद यह ब्राह्मण एक भारी जङ्गल में पहुँचा। जङ्गल की भयङ्करता देख कर उसे एक कदम भी बढ़ाना मुश्किल हो गया। इसके सिवा वह थका माँदा भी था। इसलिए एक पेड़ की छाया में चादर बिछा कर लेट गया।

आधी रात के समय वहाँ एक सन्यासी उसे दीख पड़ा। उसने ब्राह्मण से कुशल-प्रश्न पूछे।

ब्राह्मण ने उसे अपनी राम-कहानी कह सुनाई और अपना लिखा ग्रन्थ भी उसे दिखाया।

सन्यासी को उस पर दया आ गई। उसने कहा-"ब्राह्मण देवता, शिवरात्रि के दिन यात्रा करके तुम गोकर्ण-क्षेत्र पहुँचो। वहाँ पूरब दिशा बाले गोपुरम के पास बैठ कर प्रतीक्षा करो; वहाँ क्या-क्या होता है, देखो ! लेकिन उसकी खबर एक चिड़िया को भी न लगे। इस की सावधानी रखना।" यह कह कर वह सन्यासी अदृश्य हो गया।

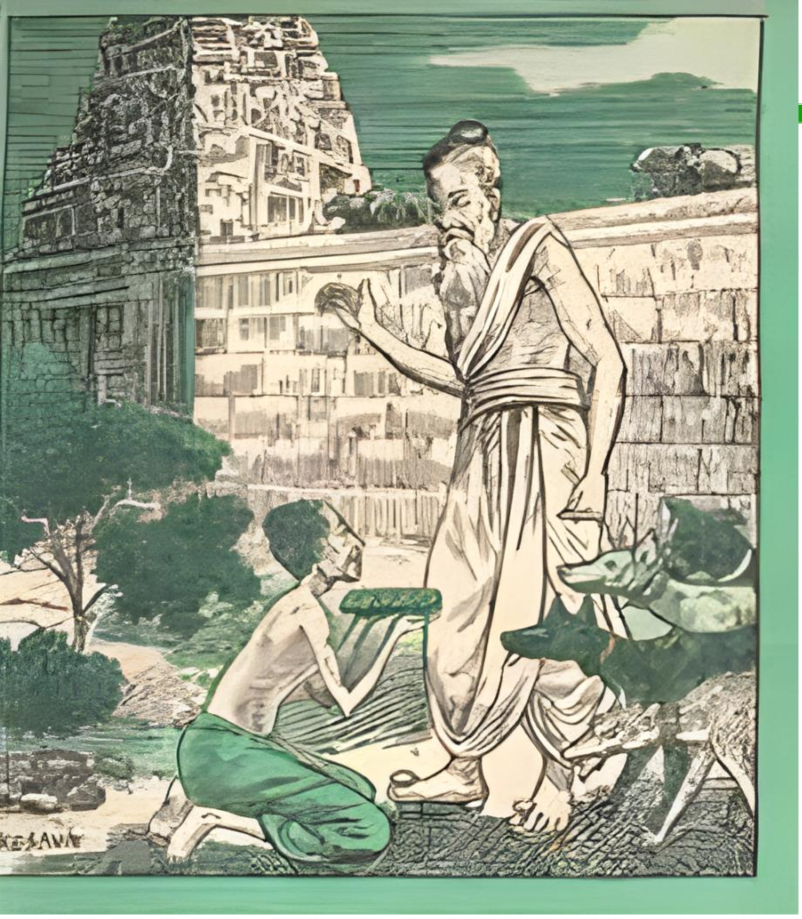

उसके आदेशानुसार वह गोकर्ण-क्षेत्र पहुँचा। पूरब दिशा बाले गोपुरम के पास बैठा हुआ जब बह गौर से देख रहा था तो सूर्यास्त होने के समय एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने साथ चार कुत्तों को लेकर उसके पास आकर खड़ा हो गया। उस बूढ़े ब्राह्मण को देखते ही उसके मन में एक ज्योति सी चमक उठी कि इसी ब्राह्मण से मेरा उद्धार होगा। तुरन्त उठ कर वह उस के पैरों पर पड़ गया और अपना अन्थ उसके हाथों में सौंप दिया।

बूढ़ा ब्राह्मण मुस्कुराता हुआ कहने लगा-"तुमने इतने कष्ट उठा कर जो यह ग्रन्थ लिखा है-दुनियों में इसकी बड़ी प्रसिद्धि होगी; चिन्ता मत करो। लेकिन तुमने मुझे ही क्यों पकड़ा है?" इस पर यह ब्रह्मण बोला-"महाराज! मैं वचन दे चुका हूँ कि यह रहस्य मैं किसी को नहीं बताऊँगा ; इसके लिए आप मुझे क्षमा कीजिए...।"

बूढ़ा ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर कहने लगा-"अच्छा जाने दो ! वह सब बातें मुझे मालूम हैं। तुमको जिसने सलाह दी थी, बह एक गन्धर्व है। इस प्रकार देवताओं का रहस्य खोलने के कारण उसके ऊपर शाप पड़ गया है। उस शाप के कारण बह इस भू-लोक में पैदा हुआा और लोकापकार के लिए तुम्हारे ग्रन्थ को बड़ी अमरत्व प्रदान करेगा। ऐसा कह कर वह ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया। वह बुढ़ा ब्राह्मण ही महर्षि वेदव्यास थे और उनके साथ जो चार कुत्ते थे, वेही चारों वेद थे।

वेदव्यास के इस प्रकार कहने के कुछ दिन के बाद उस ब्राह्मण का देहावसान हो गया। उसके हाथ में जो ग्रन्थ था, वह नदी की धारा में बह कर चम्पककेसरी राजा के पास पहुँचा। उस राजा ने उस ग्रन्थ को उलट-पलट कर देखा। लेकिन उसकी समझ में कुछ नहीं आया। तब उसने

उसे अपने दरबार के महापण्डित को देकर कहा-"आज से इकतालीस दिन के भीतर इस ग्रन्थ की बातों का विवरण मुझे मालूम हो जाना चाहिए। नहीं तो मैं तुम्हारा सिर उड़ा दूँगा।" राजा की यह आज्ञा सुन कर दरबार का वह महापण्डित चक्कर में पड़ गया।

उसी समय पण्डित का एक प्यारा शिष्य रामानुज अपने गुरु के पास आया और गुरु की चिन्ता का कारण जानना चाहा। लेकिन गुरु ने उसे कुछ नहीं बताया। राजा ने जो इकतालीस दिन की अवधि दी थी- उसमें अब एक ही रोज बाकी रह गया था।

गुरु से यह कहे बिना रहा न गया। गुरु की बात सुन कर रामानुज ने कहा-"गुरुदेव ! आप कोई चिन्ता न कीजिए।" शिष्य की इच्छानुसार गुरुश्री ने उस रात को पूजा-पाठ की व्यवस्था कर दी।

आधी रात का समय -

पूजा बहुत धूम-धाम से चल रही थी। अतुरता के मारे गुरुजी ऊपर चढ़ कर देखने लग गए। रामानुज की पूजा के फलस्वरूप छः दिव्य पुरुप प्रगट हुए और पूजा-मन्दिर में बैठकर उस महा-ग्रन्थ की रचना करने लगे।

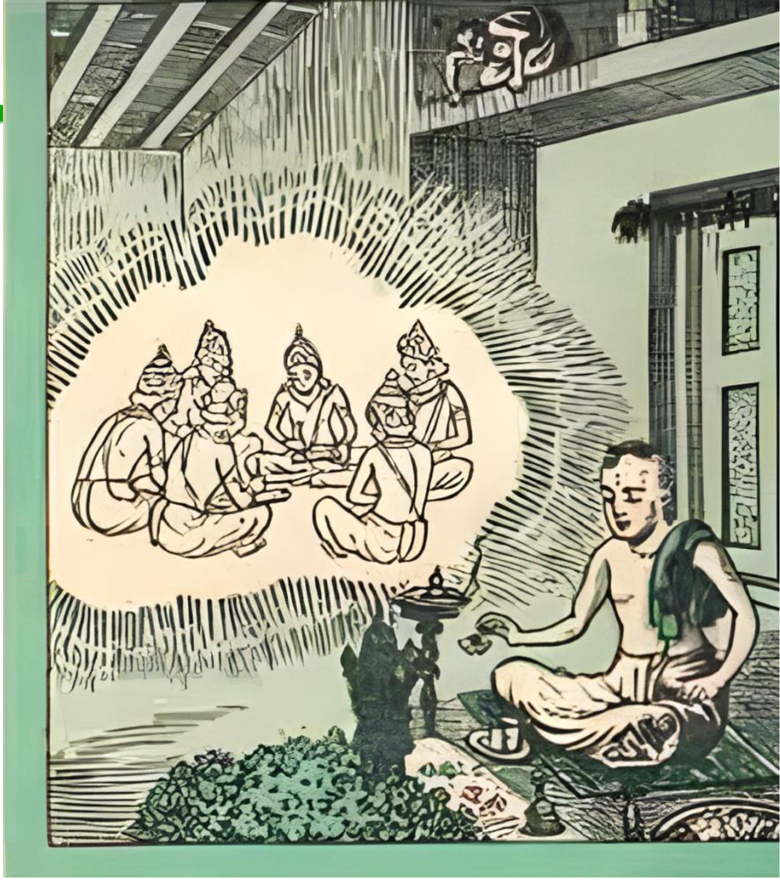

यह दृश्य देख कर गुरुदेव ऐसे घबराए कि अस्त-व्यस्त होकर ऊपर से गिर पड़े। उनकी यह अवस्था देख कर उनके शिष्य रामानुज ने कहा-"अरे रे, यह कैसा काम आप ने किया?" फिर उनकी सेवा से सुश्रूषा की और उनको चङ्गा बना दिया।

राजा ने जो अवधि दी थी, उसके बीतने के पहले ही वह ग्रन्थ सुन्दर लिपि में तैयार हो गया। तब राजा ने उस महा पण्डित का बहुत बड़ा सम्मान किया। यही मलयाल देश का परम प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिस का नाम है 'अध्यात्म रामायणम' और रामानुज ही वह शाप-ग्रस्त गन्धर्व था जिस ने उस ब्राह्मण को गोकर्ण क्षेत्र जाने की सलाह दी थी।

भगवान के साथ - - - - - - - - शतरंज की बाजी

पुराने जमाने में किसी समय एक सन्यासी रहता था। वह बड़ा नामी ग्रामी विद्वान था। उसकी शिष्य-मण्डली सारे देश में फैली हुई थी।

वह सन्यासी साल में सिर्फ छः महीने अपने आश्रम में रहता और अपने शिष्यों को बड़े मनोयोग से वेद-वेदान्त और शास्त्र आदि पढ़ाया करता था। बाकी छः महीने देश-भ्रमण करता था। इस प्रकार वह सन्यासी जब देश भ्रमण कर रहा था तो घूमता घामता वह देहात में रहने वाले एक शिष्य के यहाँ पहुँचा। संन्यासी जब कुछ दूर पर ही था कि यह समाचार शिष्यों के बीच फैला। शिष्यवृन्द्र सब जमा हुए और मङ्गल-आरती तथा गाजे-बाजे के साथ संन्यासी का स्वागत करके अपने गाँव में ले गए।

उस संन्यासी ने जैसे ही गाँव में कदम रखा, वैसी ही वहाँ ऐसी भीड़ होने लगी, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्रह्म-भोज, भजन-पूजन, कथा-पुराण के कारण ग्राम-वासी इतने खुश थे कि वे अपने को परम कृतार्थ समझने लग गए।

उस ग्राम में रहने वाले लोगों का उद्धार करके, संन्यासी अब एक दूसरे गाँव में जाने का प्रयत्न करने लगा। जब रवाना होने में सिर्फ एक घण्टा बाकी रह गया; तब वह संन्यासी अपने डेरे में कुछ सोचता हुआ इधर-उधर चहल कदमी करने लगा। यों चहल कदमी करते हुए संन्यासी के

सोमनाथ लेहरी

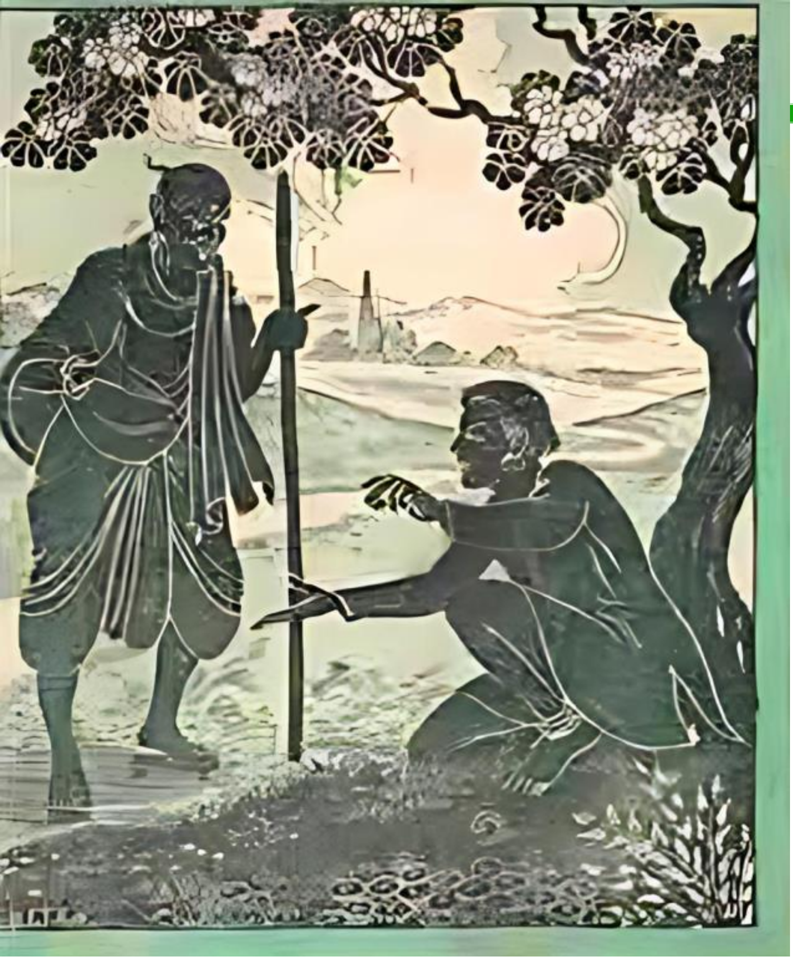

सामने जङ्गल में एक आदमी की विचित्र चेष्टाएँ उसे अचरज में डालने लगी।

"यह कौन है, भाई ? कहीं यह पागल तो नहीं है?" संन्यासी ने मन में सोचा।

यह आश्चर्य क्या है ? इसका पता लगाने का निश्चय करके वह संन्यासी उसके पास पहुँचा। "यह संन्यासी क्यों इस तरह आया है?" यों विचार करता वह अपने आप बोलने और हाथ-पैर अजीब ढङ्ग से हिलाने लग गया।

"अरे भाई ! क्या है यह सब ? तुम किससे बातें कर रहे हो ?" संन्यासी ने पूछा।

"बातें नहीं कर रहा हूँ, खेल रहा हूँ। मैं जिसके साथ खेल रहा हूँ-शायद वह तुम्हें नहीं दीख रहा है।" इस प्रकार उस आदमी ने जवाब दिया।

संन्यासी अचरज में पड़ गया-"क्या यह पागल है?" उसके मन में फिर यह अशङ्का उठ खड़ी हुई।

"अरे भाई ! तुम कौन हो और तुम्हारा खेल क्या है? तुम्हारे साथ खेलने बाला वह दूसरा गुप्त पुरुष कौन है ? क्या तुम बता सकते हो मुझे ?"

"यही तो सब से बड़ा रहस्य है। महानुभाव, आप तो लोक-कल्याण के लिए अवतरित हुर हैं। इसलिए आप से कहने में कोई हर्ज नहीं! मैं जो खेल खेलता हूँ, उसका नाम है शतरञ्ज , और मेरे साथ जो खेलता है वह है भगवान।" निष्कम्प होकर उस विचित्र मनुष्य ने कहा।

संन्यासी का हँसी के मारे पेट फटने लगा। उसने सोचा-"अरे क्या! सचमुच यह पागल ही है। लेकिन इस पागलपन में भी एक ज्ञान और प्रणालिका दीख रही है।"

फिर संन्यासी ने पूछा-"तो इस खेल में जीतता कौन है?"

"ठहरिए ! ठहरिए। अभी तक खेल पूरा नहीं हुआ है।" इस प्रकार कह कर पेड़ की ओर देखते कहने लगा- "आप ने जिस खेल की बात कही, वह मैने सुन ली है। भगवान, आज की बाजी आप की है।"

यह हरकत संन्यासी के लिए और भी अचरज पैदा करने वाली हुई। फिर उसने प्रश्न किया-"तो क्या बाजी जीतने वाले को हारने वाला कुछ देता नहीं ?"

"देता क्यों नहीं, स्वामी जी। प्रत्येक खेल में दो मुहरों की बाजी लगाई जाती है।" उस विचित्र आदमी ने जवाब दिया।

"तो अभी तो तुम हार गए हो। फिर तुम ने भगवान को दो मुहरें क्यों नहीं दी?" संन्यासी ने विनोद से पूछा।

पूछते ही उस आदमी ने अपनी जेब से दो मुहरें निकाल ली-"भगवान अपनी जीती बाजी की रकम खुद नहीं लेते हैं। लेने के लिए किसी महात्मा का रूप धारण कर मेरे सामने प्रत्यक्ष होते हैं। उन के हाथ में डाल देने से वह धन भगवान के पास पहुँच जाता है। सौभाग्य से आज आप पधारे हैं।" कह कर चमचमाती हुई दो मुहरें उप्तने संन्यासी के हाथ में रख दीं।

अब संन्यासी क्या करे ? उसे कुछ नहीं सूझ पड़ा। फौरन अपने डेरे पर आकर अपने शिष्य-गणों से बताया कि "पागलों में भी ऐसे ऊँचे दर्जे के भक्त होते हैं ?"

दो महीने बाद-

संन्यासी ने कुछ और देश-अमण किया। शिष्य वृन्दों को ज्ञानोपदेश दिए। फिर उन्होंने जो कुछ पूजा चढ़ाई थी, उसकी गठरी बाँध कर घर की ओर मुँह फेरा। लौटते लौटते हुए वह संयोग से उसी ग्राम में पहुँचा।

गाँव में पैर रखते ही संन्यासी को उस विचित्र आदमी की बात याद आ गई।

जङ्गल की उस जगह पर दृष्टि डालते ही वह पागल उसे यथा-स्थान दिखाई दिया। कुतूहलवश संन्यासी फौरन वहाँ पहुँचा।

"अरे भाई ! आज किस की जीत रही ?" उसने प्रश्न किया। खेलते-खेलते उस आदमी ने पहले की तरह पेड़ की ओर देख कर कहा-"राजन् ! खेल खतम करें।" ऐसा कह कर वह जोर से उठा कर हँस पड़ा।

"अरे भाई ! कुछ साफ़ बताओ तो सही। देखने से तो यही मालूम होता है कि आज तुम्हारी ही जीत हुई है।" संन्यासी ने कहा।

"हाँ! महात्मा आज मेरी ही जीत हुई है। आप के आशीर्वाद से आज मैं ही जीत गया हूँ। यह मेरा सौभाग्य ही कि आज की बाजी की रकम भी बड़ी महत्वपूर्ण है- एक सौ मुहरें।" कह कर वह खिल-खिला कर हँसा। "अच्छा! तो भगवान वह रकम तुम्हें कैसे देंगे?" अपनी हँसी को रोक कर संन्यासी ने पूछा।

भगवान कभी अपने हाथ से जीत की रकम देते लेते नहीं हैं। उस समय वह किसी उत्तम साधू का रूप धारण करके मेरे सामने प्रत्यक्ष होते हैं; और मुझे बाजी की रकम दे-ले जाते हैं। आज मेरे भाग्य से ऐन मौके पर आप ने दर्शन दिए हैं।"

उस की बात का मतलब समझ कर वह संन्यासी मुँह बाए खड़ा रह गया। "आप अगर वह रकम मुझे दे देंगे, तो भगवान का कर्ज अदा हो जाएगा।" यह कह कर उस धूर्त ने बगल की झाड़ी में रखी एक मोटी लाठी निकाल कर हाथ में ले ली। संन्यासी ने डर कर वह सारी रकम, जो शिष्यों ने उसे भेंट दी थी, उस के हाथ में रख दी और खाली हाथ घर की राह ली।

CHANDAMAMA (Hindi) JUNE 1964 Regd. No. M. 5452

नवीन चित्र-कथा, चित्र—१